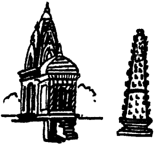
वैदिक धर्म

कार्तिक २००९

वर्ष ३३ | अंक ११



नवम्बर १९५२

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिक धर्म

सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.   वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

वेदोंकी संहिताएँ

	मू.	डा. व्य.
(१) ऋग्वेद (इसमें सर्वानुक्रम, देवतासूची, ऋषिसूची, मंत्रसूची आदि भी है।)	१०	१॥
(२) यजुर्वेद (वाजसनेयी-संहिता)	३	॥
(३) ,, काण्व-संहिता	४	॥।
(४) ,, मैत्रायणी-संहिता	६	१
(५) ,, काठक-संहिता	६	१
(६) ,, सर्वानुक्रम सूत्र (वाजस०)	१॥	॥
(७) ,, वा० सं० पादसूची	१॥	॥
(८) ऋग्वेद मंत्रसूची	२	॥

सामगान

सामवेद कौथुम शाखीय

ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	मू.	डा. व्य.
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः	६	१
प्रकृति गान (गान भाग)	५	॥

दैवत संहिता

दैवत संहिता प्रथम विभाग	६	१॥
१ अग्नि देवता मंत्र २४४३ पृ. सं. ३४६		
२ इन्द्र देवता ,, ३३६३ ,, ३७६		
३ सोम देवता ,, १२६१ ,, १५०		
४ मरुद्देवता ,, ४६४ ,, ७२		
दैवत संहिता तृतीय भाग	६	१॥

(इस तृतीय भागमें कुल १२८ देवता हैं और मंत्र संख्या ३७५८ है।)

हिंदी पुस्तकें

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

१ से १८ ऋषिका दर्शन (एक जिल्द)

(१) मधुच्छन्दा, (२) मेधातिथि, (३) शुनःशेप (४) हिरण्यस्तूप, (५) कण्व, (६) सव्य, (७) नोधा, (८) पराशर, (९) गोतम, (१०) कुत्स, (११) त्रित, (१२) संवनन, (१३) हिरण्यगर्भ, (१४) नारायण, (१५) बृहस्पति, (१६) वागाम्भृणी, (१७) विश्वकर्मा, (१८) सप्त ऋषि.रु २१॥, १॥]

(१९) वशिष्ठ ऋषिका दर्शन, ७ रु.) डा व्य १॥

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

	मू.	डा. व्य.
१ प्रथम अध्याय श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥	।=
३० वा ,, मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२	।≈
३ ३२ ,, एक ईश्वरकी उपासना	१॥	।=
४ ३६ ,, सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१॥	।≈
५ ४० ,, ईशोपनिषद्	२	।≈

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

काण्ड १–५	८ रु.	१॥
,, ६–१०	८	१॥
,, ११–१८	१०	१

उपनिषद् ग्रंथमाला

	मू.	डा. व्य.
१ ईशोपनिषद्	२	॥
२ केन उपनिषद्	१॥	॥
३ कठ उपनिषद्	१॥	॥
४ प्रश्न उपनिषद्	१॥	॥
५ मुण्डक उपनिषद्	१॥	॥
६ माण्डूक्य उपनिषद्	॥	≈

साक्षात्कार ग्रंथ

ईश्वरका साक्षात्कार प्रथम भाग	३	॥≈

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी (टीका समेत)		
,, तीन पृथक् जिल्दोंमें	१५	१॥
,, एक जिल्दमें	१२॥	१॥
,, श्लोकार्ध सूची	॥।	।≈
भगवद्गीता लेखमाला भाग १, २, ७	३॥।	१
गीताका राजकीय तत्वालोचन	२	॥
गीता कर्मयोगी गणेशानन्दजी कृत	१	।=
भगवद्गीता छोटी पुस्तक	१	।≈

वाल्मीकि रामायण

१ बालकांड	४	॥≈
२ अयोध्या कांड पूर्वार्ध	४	॥≈
३ ,, ,, उत्तरार्ध	४	॥≈
४ अरण्यकांड	४	॥≈
५ किष्किन्धाकाण्ड	४	॥≈
६ सुन्दरकांड	४	॥=

७ युद्धकांड छप रहा है।

वर्ष ३३ अंक ११

वैदिक धर्म

क्रमांक ४६

कार्तिक, विक्रम संवत् २००९, नवम्बर १९५२

सर्व समर्थ ईश्वर

सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमितोनि
तानि ॥ अथर्व ४।१६।५

" राजा वरणीय श्रेष्ठ देव उस सबको जनता है कि जो द्युलोक और भूलोकके अन्दर विद्यमान है और जो इससे भी परे हैं। मनुष्योंके आंखोंके पलकोंकी झपकोंको भी उसने गिना है। इन सबको वह नापता और गिनता है जिस तरह जुआडी पासोंको नापता है। "

परमेश्वर सबसे श्रेष्ठ है, उससे अधिक सामर्थ्यवान् कोई दूसरा नहीं है। द्युलोकसे भूलोक तक जो भी है और जो इससे बाहर है, सबको प्रभु यथावत् जानता है। वहां तककी मनुष्योंकी आंखोंकी पलकोंकी झपकोंको भी उसने गिना है। जो भी यहां हो रहा है वह सब वह जानता है। उससे छिप कर कोई कुछ भी कर नहीं सकता। यह उसका महान् सामर्थ्य है।

महाभारत

१ आदिपर्व	मूल्य ७	डा. व्य. १॥
२ सभापर्व	३॥	॥
३ शांतिपर्व (पूर्वार्ध)	१०	१

महाभारतकी समालोचना

इसके दो भाग है। प्रत्येक भागका मूल्य	०॥।	।≤

वेद परिचय

१ वेद परिचय भाग १	१॥	।=
२ ,, ,, २	१॥	।=
३ ,, ,, ३	२	।≡

वेद प्रवेश

१ मरुद्देवता का मंत्र संग्रह	५	॥।
२ अश्विनौ देवताका मंत्र संग्रह	५	१।
३ ऋग्वेदके अग्नि सूक्त	२	॥

संस्कृत पाठमाला
(चौवीस भाग)

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रत्येक पुस्तक	॥	=
१ से २४ भागोंका पुरा सेट	१२	१

धर्म शिक्षाके ग्रंथ

बालक धर्म शिक्षा प्रथम भाग, प्रथम श्रेणीके लिये	≡
,, ,, द्वितीय भाग, द्वितीय ,, ,,	।–
वैदिक पाठमाला तृतीय श्रेणीके लिए	।–

वेद-स्वयं-शिक्षक

वेदका स्वयं शिक्षक भाग १	१॥	।=
,, ,, ,, भाग २	१॥	।=

आगम निबंध माला

१ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥।	=
२ वैदिक सर्प विद्या	॥=	=
३ वेदमें चर्खा	॥=	=
४ मानवी आयुष्य	॥	=
५ इन्द्र शक्तिका विकास	॥।	=
६ वेदमें कृषिविद्या	॥	–
७ छूत और अछूत प्रथम भाग	१	।≈
८ ,, ,, द्वितीय भाग	१	।≈
९ शतपथ बोधामृत	।=	–

देवता परिचय ग्रंथमाला

१ ऋग्वेदमें रुद्र देवता	॥=	=
२ वैदिक अग्निविद्या	२	।=
३ वैदिक चिकित्सा	१॥	।–

योग साधनमाला

	मू.	डा. व्य
१ ब्रह्मचर्य	१॥	।≡
२ योगके आसन	२॥	॥
३ योगके आसन चित्रपट	।–	–
४ योगसाधनकी तैयारी	१	।≡
५ सूर्यभेदन व्यायाम	॥।	।–
६ सूर्य नमस्कार	१	।–
७ ,, ,, चित्रपट	≡	–

उद्बोधक पुस्तकमाला

१ विजया दशमी (दशहरा)	॥	≈
२ भारत वर्षके हिंदू सम्राट्	॥।	।–
३ आर्योंका भगवा ध्वज	।	
४ हिंदी मुसलमानोंके कारनामोंका चिट्ठा	।=	
५ श्री छत्रपति शिवाजी महाराजका राजा जयसिंहको पत्र	≤	
६ शेषशायी नारायण	=	
७ स्पिनोझा और उसका दर्शन	२	॥

वैदिक व्याख्यान माला

(१) मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन। (२) वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त। (३) अपना स्वराज्य। (४) श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु। (५) व्यक्तिवाद और समाजवाद। (६) ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। (७) वैयक्तिक दिव्यजीवन और राष्ट्रीय उन्नति। (८) सप्त व्याहृति।

ये व्याख्यान तैयार हैं। दूसरे तैयार हो रहे हैं। [प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने और डा. व्य. =) दो आने]

विष्णु सहस्र नाम — मू. १॥ ट. ख. ॥

मासिक पत्र

वैदिक धर्म वार्षिक चंदा ५) वी. पी से ५॥)

पं. मदन मोहन विद्यासागर
तेनाली, के पुस्तक

१ वेदोंकी अन्तःसाक्षी का महत्त्व	०—९—०
२ संस्कार महत्व	०—९—०
३ जन कल्याण का मूल मन्त्र	०—८—०
४ आर्य स्तोत्र	०—८—०

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक १९]

(लेखक— श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

• • • • • • •

स्वसंरक्षण होनाही चाहिये

स्वसंरक्षणकी तैयारी

वैदिक युगमें शिक्षाके द्वारा युवक और युवतियां किस प्रकारसे तैयार होते थे यह अबतकके विवरण द्वारा हमने देखा। इस विषयके शिक्षाके बीज प्रारम्भसे ही वेदकालीन शिक्षणालयोंमें किस प्रकार बो दिये जाते थे, इस विषयमें अब हमें विचार करना है।

लडका यदि बुद्धिमान् हुआ तो छठवें वर्ष और यदि साधारण हुआ तो आठवें वर्ष उसे गुरुकुलमें भेज दिया जाता था। क्षत्रिय-वैश्योंके लडके १२ वर्षतक घरमें बढने देनेकी छुट्टी स्मृतियोंके अनुसार रहती थी। अर्थात् १२ वें वर्षतक सब लडके गुरुकुलमें पहुँचने ही चाहिये। ब्राह्मणोंके लडके तो ८ वें वर्षके पश्चात् घरमें रह ही नहीं पाते थे। १२ वें वर्षके पश्चात् यदि लडका घर रह जाता और गुरुकुलमें न आता तो वह पतित माना जाता था और समाजमें उसे कोई स्थान न मिलता था। आज अविद्वान् द्विजका सन्मान भी समाजमें कम नहीं होता। किन्तु इस प्रकारकी उदासीनता उस युगमें नहीं थी। सावित्री-पतित हुए बाल्यका जीवित रहना समाजमें, असम्भव था। स्वतन्त्र-शिक्षाका यह आदर्शप्रेम उस समय जनतामें था। शिक्षाकी अनिवार्यताके लिये कोई कानून नहीं था। उस समय कानूनोंकी भरमार भी नहीं थी। किन्तु समाजकी स्वयं उद्भूत इच्छा और अनिच्छाका प्रभाव कानूनसे भी अधिक होता था। किसी कुलमें यदि कोई बालक गुरुकुलमें प्रविष्ट हुए बिना रह जाता तो समाजमें उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती थी। इस अप्रतिष्ठासे सभी डरते थे। इससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज जीवित समाज था। आज हमारा समाज जीवित नहीं है। क्योंकि उसमें स्वसंरक्षणकी भावना तक दिखाई नहीं देती।

'अपने संरक्षणके लिये संगठित होओ' यदि ऐसा आज कोई कहे तो उसकी बात किसीकी समझमें नहीं आती। उलटे इन विचारोंका आज खण्डन किया जाता है। आज इतनी अधिक उदासीनता हमारे हिन्दु-समाजमें व्याप्त है, जिसे हटाना परमावश्यक है।

योगसाधनकी शिक्षा

विद्यार्थीके गुरुकुलमें प्रविष्ट होते ही उसका विद्यारम्भ हो जाता था। गणित, इतिहास, भूगोल, नक्षत्रविद्या, क्षत्रविद्या, देवजनविद्या आदि अनेक विद्यायें उसे सीखनी पडती थीं। यह शिक्षा आजकी अपेक्षा किसी प्रकार भी कम नहीं थी। किन्तु इस सबके साथ ही छात्रोंको योगसाधनकी शिक्षा भी प्राप्त होती थी और यह एक महत्वकी बात थी। योगके आसनादि व्यायाम बिना खर्चके और निःसंशय आरोग्यको बढानेवाले हैं। आसन और प्राणायामके द्वारा रोग दूर होते हैं, बल बढता है, आयु बढती है और अपूर्व उत्साह भी बढता है। आज हमें अपने विद्यालयोंमें इस व्यायामको अनिवार्य रूपसे प्रारम्भ करना चाहिये। शरीरके समस्त स्नायुओंका अच्छा व्यायाम हो, उनका बल बढे तथा वहाँके रोगबीज दूर हों, ऐसी योजना इस योगके व्यायाममें रहती है। शरीरपर काबू रहे, वह चपल हो, व्यर्थ चरबी न बढे तथा भरपूर बल बढकर दीर्घायु प्राप्त हो सके इस प्रकारकी योजना इस व्यायाममें रहती है। प्रतिदिन यह व्यायाम विद्यार्थियों द्वारा कराया जाता था।

शरीर समस्त सुखोंको प्राप्त कर लेनेका साधन है। यही यदि रोगी और निर्बल रहेगा तो इस जीवनमें कोई भी उन्नतिसाधक पुरुषार्थ नहीं हो सकेगा। इसीलिये विद्यार्थी के गुरुकुलमें प्रविष्ट होते ही साक्षरताकी शिक्षाके साथ ही उसे शारिरिक बलसंवर्धनकी शिक्षा भी दी जाती थी।

ज्ञानीको बलवान होना चाहिये

आज हम अपने देशमें देखते हैं कि शिक्षित मनुष्य निर्बल ही है और साथ ही वह अल्पायु भी है। किन्तु ठीक ठीक योजनापूर्वक शिक्षण व्यवस्था की जाय तो निर्बल एवं अल्पायु होनेका कोई कारण नहीं है। शिक्षणक्रममें योग साधनोंका समावेश करके युवकोंमें स्वसंरक्षणकी क्षमता उत्पन्न करनेकी योजना जिस प्रकार पूर्वाचार्योंने की थी उसी प्रकार आज भी वह करनी चाहिये।

उपनयन होनेपर प्रविष्ट हुए हुए बटुको एक कमरपट्टा बांधनेके लिये मिलता था, उसके हाथमें दण्ड दिया जाता था और समिधा काटनेकी फरशी भी उसे दी जाती थी। कमर कसा हुआ, जिसके हाथमें लाठी है तथा जो फरशी-का प्रयोग करता है ऐसा यह गुरुकुलके बटुका स्वरूप होता था।

स्वसंरक्षणकी तैयारी

यह सब स्वसंरक्षणका प्रबन्ध है। यह तैयारी आठवे वर्ष से की जाती थी। आजके शिक्षाविशारदोंको इसपर ध्यान देना चाहिये। आठवें वर्षसे ही यदि इस प्रकारकी शिक्षा मिलेगी तो तरुण पीढी क्यों न स्वसंरक्षणक्षम बनेगी? लडका १२ वर्षोंतक गुरुकुलमें रहता है ऐसी अवस्थामें कमरपट्टा, लाठी और फरशीका प्रयोग उसे करना होता है। इतने अर्सेमें अर्थात् २० वर्षोंके पश्चात् वह पूर्णतः स्वसंरक्षणक्षम बन जाता था, ऐसा माननेमें कोई रुकावट नहीं आती।

वनका निवास

गुरुकुल प्रायः वनोंमें हुआ करते थे। नागरिक लोगोंकी अपेक्षा वनमें रहनेवाले लोग प्रायः अधिक सहनशील, और अधिक वीर होते हैं। उन्हें जंगलके सांप, बिच्छू, शेर, हाथी इत्यादि प्राणियोंका भय नहीं रहता, क्योंकि रात दिन उन्हींके बीच रहना पडता था। अर्थात् नगरमें रहने-वालोंकी अपेक्षा गुरुकुलीय ये युवक अधिक साहसी होते थे। ऐसे युवकोंके पास लाठी और फरशी रहनेपर यदि आवश्यकता पडेगी तो वे उनका प्रयोग करनेमें हिचकिचा-येंगे नहीं, यह तो स्पष्ट है।

विवाहके पश्चात् तलवार

बचपनसे जिन्होंने लाठी और फरशी धारण की हो उन्हे युवावस्थामें विवाह होते ही 'स्फ्य' नामक दुधारी तल-वार जैसा शस्त्र धारण करना होता था। विवाहित युवकको स्फ्य धारण करनेकी धर्मकी आज्ञा ही है। यह गृहयज्ञका एक साधन ही था। कमरपट्टा, लाठी और फरशीका उपयोग आवश्यक होनेपर अवश्य किया जाय। किन्तु यज्ञाङ्गके रूप-में कृपाण (स्फ्य) तो उसे अपने पास अवश्यही रखना चाहिये। गृहस्थ एवं वानप्रस्थ दोनों आश्रमोंमें इसे अपने साथ रखना है। यदि किसीको क्षात्रधर्मकी विशेष शिक्षा, लेनी हो तो उसे धनुर्विद्या भी सिखाई जाती थी। किन्तु सामान्यतः अहिंसावादी ब्राह्मण बटुको भी कमरपट्टा, लाठी, फरशी, कृपाणका उपयोग अवश्य सीखना पडता था। वानप्रस्थके पश्चात् संन्यासाश्रम है। '**मत्तः सर्व भूतेभ्यः अभयं**' मुझसे किसीको भी भय प्राप्त नहीं होगा, ऐसा संकल्प करके संन्यासाश्रम लेना होता है।

दण्डी संन्यास

इस प्रकारका यह संन्यासी यदि फरशी और कृपाण न भी धारण करता हो तो 'दण्डी' (दण्ड धारण करने-वाला) इस रूपमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार ब्रह्मचर्यसे लेकर संन्यासतक दण्ड धारण आवश्यक है। शेष आश्रम 'सर्व भूतेभ्यः अभयं' ऐसी प्रतिज्ञा कभी भी नहीं करते। किन्तु संन्यासी इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करता है और फिर संन्यास ग्रहण करता है। इस प्रकारसे 'मुझसे किसीको भय नहीं है' ऐसा कहनेवाला भी दण्डधारी है यह बात ध्यान देने जैसी है। स्वसंरक्षण एवं दुष्टोंका दमन तो प्रत्येकका कर्तव्य ही है। इसका पालन तो प्रत्येकको करना ही चाहिये, ऐसा उपर्युक्त विवेचनसे सिद्ध होता है।

गुण्डोंका दमन

गुण्डे लोग बिना दण्डेके ठीक नहीं हो सकते। गुण्डोंके

लिये दण्ड धारण करना आवश्यक ही है। जहाँ दण्ड न होगा वहाँ गुण्डोंका उपद्रव बढता ही जावेगा। गुण्डोंको दण्ड देनेके लिये ब्रह्मचारीने कमरपट्टा, दण्ड और फरशी हाथमें ली। गृहस्थाश्रममें परिवारके भरणपोषणकी जिम्मेवारी आते ही और एक कृपाण इसे धारण कर लेना होता है। वानप्रस्थाश्रममें ये समस्त संरक्षणके साधन रहते हैं। संन्यासी पूर्णतः अहिंसा वृत्तिका होता है। इसने फरशी और कृपाणका तो त्याग कर दिया किन्तु दण्डको रखा है। कृपाण और फरशीकी अपेक्षा दण्ड अधिक अहिंसक है, यह माननेमें कोई प्रत्यवाय नहीं है।

जन्मसे लेकर मृत्युपर्यंत, ब्रह्मचर्यसे लेकर संन्यासाश्रम-तक स्वसंरक्षण एवं गुण्डोंके निराकरणके साधन पास रखने की यह वैदिक धर्मकी प्रथा है। स्वसंरक्षणके प्रति उदासीन रहनेवाला वैदिक धर्म नहीं है। दक्षतापूर्वक स्वसंरक्षण करते रहो तथा गुण्डोंको हटाओ, यह आदेश वैदिक धर्म अपने अनुयायिओंको दे रहा है।

समस्त देव सशस्त्र

पीछे यह बताया ही गया है कि हिन्दुओंके समस्त देव और देवता सशस्त्र हैं। पुरुष देवोंकी अपेक्षा स्त्री देवताओंके पास शस्त्रास्त्र अधिक हैं; क्योंकि गुण्डोंसे स्त्रियोंकी रक्षा अवश्य होनी चाहिये। अतएव हिन्दु धर्ममें दोनों सशस्त्र हैं।

देवोंका आदर्श मनुष्योंको अपने सामने रखना चाहिये। अर्थात् स्त्रियोंको शस्त्रास्त्र धारण करने चाहिये और उनके प्रयोगोंमें निपुणता प्राप्त करनी चाहिये।

दशावतारमें शस्त्र-वृद्धि

दशावतारोंमें शस्त्रोंकी वृद्धि हुई हुई दीखती है। मत्स्यके पास शस्त्र नहीं है। बडा मत्स्य छोटे मत्स्यको निगल जाता है। इससे अपनी रक्षा करनेके लिये कूर्मने अपनी पीठको ढाल बनाया। ऐसा होनेपर मत्स्यके लिये उसका निगल जाना असम्भव हो गया। इसके बाद वराह उत्पन्न हुआ। उसने एक सींगका निर्माण किया जिससे वह शत्रुको विदीर्ण कर सकता था। इसके बाद नृसिंहका अवतार हुआ। यह तो साक्षात् सिंह था। नख, दांत और पंजोंसे खूब संहार करने लगा। फिर आये परशुराम। फरसा धारण करनेके कारण ही इनकी विजय हुई। इनके पश्चात् राम धनुर्धारी बने। धनुर्धारियोंके आगे फरशी-वालोंका टिकना सम्भव नहीं है। अतः धनुर्धारियोंकी विजय होती रही। उसके बाद आये कृष्ण। ये तो सुदर्शन-चक्र, गदा, धनुष्यबाण आदि समस्त शस्त्रोंके संचालनमें प्रवीण थे और साथ ही राजनीतिमें भी निपुण थे। यही कारण है कि इनकी विजय हुई। इसके पश्चात् जो बुद्ध हुए वे तो हमारे देव ही नहीं थे। क्योंकि इसके बादका जो कल्की अवतार है वह तो ढेरभर शस्त्रास्त्रोंको धारण करनेवाला है। ऐसी स्थितिमें बीचमें ही आया हुआ अहिंसावादी बुद्ध जंचता नहीं है। सम्भवतः इस शस्त्रवृद्धिको रोकनेके उपायके रूपमें बुद्धने अहिंसावादका प्रचार किया। किन्तु इससे जब गुण्डोंका शमन न हो सका तब अनेक शस्त्रास्त्रों-को धारण करनेवाला कल्की अवतार होगा ऐसी कल्पना की गई। अस्तु। इस प्रकारसे इन दशावतारोंमें क्रमशः शस्त्र-वृद्धिकी आवश्यक स्थिति दर्शाई गई है।

यह शस्त्रवृद्धि कब और किस प्रकार रुकेगी! इसका उत्तर कोई भी नहीं दे सकेगा। यदि हमने युद्ध न किया किन्तु दूसरेने आक्रमण कर दिया तब तो हमें प्रत्याक्रमण करना ही होगा। इस कारण किसीके लिये सम्पूर्णतः अहिंसा व्रतका पालन करना सम्भव नहीं है। संसारकी यही वास्तविक स्थिति है।

राम एक पत्नीव्रत था। किन्तु उसका प्रतिस्पर्धी रावण दूसरोंकी स्त्रियाँ भगाकर उसका प्रतिस्पर्धी तो था ही। पाण्डव पांच गांव लेकर अल्पसन्तोषी वृत्तिके थे, किन्तु कौरव बिना युद्धके सूईकी नोक बराबर भूमि देनेके लिये तैयार नहीं थे। ऐसी स्थितिमें अर्जुनने कहा कि—

यदि मामप्रतीकारं अशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥(गीता)

'निःशस्त्र रहकर युद्ध करनेवाले मुझको ये सारे कौरव शस्त्र लेकर यदि मार डालेंगे तब भी अत्युत्तम होगा।' वीर अर्जुनका यह इस प्रकारका अहिंसक निश्चय हुआ। किन्तु यह निश्चय अधर्म्य, क्लैब्य और अनार्थ है, ऐसा कह-कर श्रीकृष्णने अर्जुनको युद्धके लिये उभारा, युद्ध कराया

तथा कौरवोंका विनाश कराकर संसारके लिये यह आदर्श उपस्थित किया कि भारतीय सभ्यता स्वयं होकर आक्रमक युद्ध विनाकारण करेगी नहीं; किन्तु स्वसंरक्षणके लिये आवश्यक होनेपर वह कभी आगापीछा नहीं करेगी।

इस प्रकारके युद्धोंके लिये भी तो शस्त्रास्त्रोंकी तयारी रखनी आवश्यक है। शत्रुके शस्त्रोंकी अपेक्षा हमारे शस्त्र कुछ न कुछ अधिक सक्षम हुए बिना उनका प्रतिकार कैसे सम्भव है ? यही कारण है कि शस्त्रास्त्रोंकी यह अपरिहार्य अभिवृद्धि होती जा रही है।

इस चक्रापत्तिसे मुक्त होनेके लिये भारतीय संस्कृतिने प्रत्येक मनुष्यको स्वसंरक्षणके लिये शस्त्र धारण करनेके लिये अनुज्ञा दी है, यह हमने ऊपर देखा है। किन्तु प्रत्येक मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रममें योगसाधनका अनुष्ठान किया करता था। उसमें आसन शरीर सामर्थ्यको बढानेके लिये, प्राणायाम दीर्घायुके लिये, धारणा और ध्यान मनको बलवान् करनेके लिये, समाधिबुद्धिका बल बढानेके लिये सिखाये जाते थे। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिको स्वसंरक्षणक्षम बनाया जाता था।

इन सबके पास दण्ड, फरसा, कृपाण आदि आवश्यक शस्त्रास्त्र एवं उनके प्रयोगका ज्ञान अवश्य रहता था। इस प्रकार स्त्री-पुरुष संरक्षणक्षम, बलवान् और सशस्त्र हुआ करते थे। किन्तु यदि वे क्रूर होंगे और दूसरोंपर निष्कारण आक्रमण करेंगे तो संसारमें प्रलय मच जावेगा। इस प्रकार अनर्थ न होने देनेके लिये इसी योगसाधनकी शिक्षामें 'यम-नियम' भी सिखाये जाते थे और इसमें 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह' की शिक्षा दीजाती थी। इस कारण स्वसंरक्षणके लिये तत्पर यह आर्य वीर स्वभावतः अनाक्रमक वृत्तिका बनता था। 'दूसरेका आक्रमण होनेपर हम योंही न मरेंगे अपितु शत्रुका सफल प्रतिकार करेंगे किन्तु स्वयं निष्कारण किसीपर आक्रमण न करेंगे' यह इसकी वृत्ति रहा करती थी।

भारतीय संस्कृतिका यही तत्त्व है। स्वसंरक्षणके लिये नित्य सन्नद्ध एवं दक्ष रहना चाहिये। एतदर्थ आवश्यक दक्षता एवं तैयारी सदा रहनी चाहिये। अपनी असावधानी-का लाभ शत्रु न उठा सके, किन्तु हम कभी दूसरोंपर आक्र-मण न करें, ये ही भारतीय संस्कृतिके मूल मन्त्र हैं।

यदि हमारी अच्छी तैयारी हुई और यदि हम बलवान हुए तो शत्रु आक्रमण ही न करेगा। हमारी निर्बलतासे शत्रुको आक्रमक बननेका प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अतएवं यदि हम बलवान और सुसज्ज रहेंगे तो ही शान्ति रह सकती है। यही भारतीय संस्कृतिका सिद्धान्त है।

अनुवादक— महेशचन्द्रशास्त्री, विद्याभास्कर साहित्यरत्न

ब्रह्म–साक्षात्कार

अध्याय ४ । न तस्य प्रतिमा अस्ति० ॥ वा. य. ३२।३

(उसका बनानेवाला आदि कोई नहीं)

खण्ड ६] सूर्य परमात्माकी प्रतिमा है, तो किन अर्थोंमें ?

[वैदिक धर्म मार्च १९१२ के अंकसे आगे]

लेखक— श्री० गणपतराव बा० गोरे, ३७३ मंगलवार ' बी ', कोल्हापूर.

१ प्रारंभिक शब्द— मार्चके अंकमें यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनास ॥ ऋ० २।१२।९ पर विचार हुआ था, जिसमें सूर्यको विजय दिलानेवाला, विश्वका बनाने, मापनेवाला, स्वसत्तासे विश्वका प्रतितोल बन जानेवाला और स्वयं अचलायमान रहते हुए विश्वको गति देनेवाला बताया गया था । बराती सूर्य ग्रहमालाकी बरातको साथ लिए निरंतर फिरता रहता है । ग्रहमालामें ब्रह्म-साक्षात्कार की नवीन युक्तिसे सूर्यको सृष्टिका अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध किया गया था । इसीका समर्थन कार्त्तिकेय और गणपतिके दृष्टान्तसे किया गया था ।

आज अ. ८ ९।६ के पूर्वार्धपर विचार होना है । सूर्यसे जगत् उत्पन्न हुआ, और तबसे ही (रोदसी) सूर्य तथा पृथिव्यादि ग्रहोंमें व्यापक अग्नि परस्पर खैंचातानी कर रहे हैं । परिणामस्वरूप न तो सूर्य इन पृथिव्यादि ग्रहोंको खैंचकर अपनेमें मिलाता है और न ये ग्रह सूर्यके गुरुत्वाकर्षण शक्तिका उल्लंघन करके किसी दूसरी ओरको जा सकते हैं ! फलस्वरूप वे सूर्यकी प्रदक्षिणा ही करते रहते हैं । प्रलयकालमें इनकी शक्ति न्यून होगी और तब ये सूर्यमें एकरस हो जाएंगे, ऐसा अनुमान होता है ।

आर्य लोग वेदकी उत्पत्ति सृष्ट्यारंभमें अर्थात् आजसे लगभग १ अब्ज ९७ कोटि वर्ष पूर्व मानते हैं, और वेदको सूर्य परमात्माका ज्ञान समझते हैं । अर्थात् परमेश्वरने इतने वर्ष पूर्व हमें बताया था कि ग्रहोंके झुकावका गुरुत्वाकर्षण केन्द्र सूर्य ही है । परन्तु हायस्कूलों और कालेजमें हमें सिखाया जा रहा है कि गुरुत्वाकर्षणकी विद्या Gravitation Theory का सर्वप्रथम समझने वाला सर इस्साक न्यूटन = Sir Issac Newton था, उसने इस विद्याको १६५१ में ढूंढ निकाला ! Gravitate= move or tend dy force of gravity TOWARDS a body ऐसा अर्थ Concise Oxford Dictionary में है । यह अर्थ प्रतिमा शब्दमें उपरोक्त मंत्रमें घटता है । अधिक विचार होना चाहिए, और विद्वान् करेंगे ।

· अ० ८।९।६ में आया ' वैश्वानर ' तथा ' स्कम्भ और इन्द्र ' ये तीनों परमेश्वरके नाम हैं, ऐसा विचार श्री पं० जयदेवजीका है— देखो उनकी अथर्व १०।७-८ की भूमिका । श्री पं० सातवलेकरजीने अ० ८।९ का शीर्षक ' एक ही उपास्य देव ' जमाया है- देखो उनका भाष्य, लेखकका मत है कि वैश्वानर = साकार सूर्य ही वह ' एक उपास्य देव ' है, और उसकी जो प्रतिमा है वही स्कम्भ है । स्कम्भपर किसी विशेष अध्यायमें विचार होगा ।

इस लेखमें साकार सीमित सूर्यकी अनन्त व्यापकताकी कल्पना करनेका थोडासा प्रयत्न किया है- अधिक किसी अध्याय विशेषमें करनेकी कामना है । आर्य भाष्यकारोंने वा० य० ३२।३ में आए प्रतिमा शब्दका अर्थ मूर्ति किया है, परंतु लेखकका मत है कि यह अर्थ न वहां होना चाहिए, न अ० ८।९।६ में । इसपर इस लेखमें विस्तृत विचार हुआ है । जिससे मूर्तिपूजापर भी प्रकाश पडा है । आगे खण्ड ६ के दूसरे मंत्र अ० ८।९।६ पर विचारारंभ होता है ।

(२) सूर्यकी प्रतिमा = उलट-खैंच-शक्ति

Gravitation का प्रभाव क्षेत्र।

ऋषि अथर्वा, कश्यपः, सर्वे वा ऋषयः। देवता विराट्।

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ॥ अ० ८।९।६ पूर्वार्ध

अर्थ— (वैश्वानरस्य) विश्वमें व्यापक नर पुरुष वा सूर्यकी (प्रतिमा) प्रतिकृति, सचेत पुतला, प्रतितोल, गुरुत्वाकर्षण शक्ति = Gravitation, प्रतिबिंब, प्रतिनिधि, स्कम्भ वा स्कन्ध (उपरि द्यौः) पृथिव्यादि ग्रहोंके भी परेतकका वह आकाश है, (यावत्) जहांतक (रोदसीः) सूर्य तथा पृथिव्यादि ग्रहोंका (अग्निः) परस्पर खैंचनेका सामर्थ्यं = गुरुत्वाकर्षण (वि+बबाधे) विशेष प्रकारसे+परस्पर रोक-थाम प्रतिरोध, मुकाबला, स्पर्धा करता रहता है ॥ ६ ॥

स्पष्टीकरण— ' उपरि ' पदका अर्थ ' ऊपरवाला ' भी है, और Bavond, in addition to = पीछेका, परली ओरका, पश्चिम दिशाका ' ऐसा भी है। इस मंत्रमें दूसरा अर्थ ही लेना चाहिए। कारण यदि पहला अर्थ लिया जाय, तो पृथिवी सूर्यसे ९,३०,०३००० मील दूर होनेके कारण सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिके क्षेत्रका व्यास इतना ही सिद्ध होगा। परंतु हम देखते हैं कि प्लूतो = Pluto ग्रह ३,८४,००००००० मील दूर है, उसे भी सूर्य अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा अपनी प्रदक्षिणा करवा रहा है ! क्या सिद्ध हुआ ? यही कि साकार सीमित सूर्यकी प्रतिमा= गुरुत्वाकर्षण शक्तिका पार आजका बडा चडा ज्योतिष विज्ञान भी नहीं पा सकता ! कौन जाने प्लूतोसे भी परे और कितने ग्रह पाश्चात्य ज्योतिषियोंको अभी और ढूंढने शेष हैं ?

ज्योतिषी श्री K. L Clissold ने डिसेंबर १९३८ के Great Thoughts में लिखा था कि हमारे सूर्यका पडोसी सूर्य हमसे २५,२५,०००००००००० मील दूर है। कल्पना कीजिए कि इन दोनों सूर्योंकी प्रतिमाएं सम समान हैं। परिणाम स्वरूप उन्हें १२,५०,०००००००००० मील-पर मिलना चाहिए। यह भी हमारी प्लूतोकी दूरीपर अनुमानित वैश्वानरकी प्रतिमाके व्यास ७,७५,५८,०२,००० मीलसे कहीं अधिक है। पुनः सिद्ध हुआ कि सान्त सूर्यकी प्रतिमा अनंत है। इस विषयपर कुछ आगे भी लिखा जायगा परंतु वेदके प्रमाण फिर कभी।

इतने लेखसे प्रतिमा के दो अर्थों ' प्रतितोल ' = Counter balance तथा ' गुरुत्वाकर्षण ' पर प्रकाश पडा। ' प्रतिकृति ' = Reflection = छाया चित्र अर्थ इसलिए है कि यह प्रतिमा सूर्यकी ही बनावट है- प्रतिबिंब है। प्रतिनिधि = Substitute proxy, Agent प्रतिमा इसलिए सूर्यकी है कि ग्रहों आदि पर सर्व कार्य इसी सूर्यकिरण-प्रभावित आकाश द्वारा हुआ करते हैं, इसी कारण वह सचेत पुतला = Livingstatue भी है। प्रतितोल है इसी कारण वह स्कम्भ, खम्भा, थम्भा, आधार- Support भी है, स्कन्ध = कन्धा = Shoulder और स्तम्भ = लाट = Pillar भी है।

ऋषि- देवता विचार— ' ऋषि ' पद ' ऋष् ' धातुसे बना है जिसके अर्थ हैं ' आना, जाना, लाना, ले जाना, बेधना, दुखाना, हनन करना, बहना बहाना, सरकना- सरकाना ' इन अर्थोंमें सूर्य तथा सूर्य किरणें दोनों ' ऋषि ' कहलाते हैं। प्राणियोंका जन्म, पालन-पोषण, मृत्यु, आवागमन इन्हींसे होता है। अथर्व १०।७।१४ के अनुसार यही मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं—इन्होंने प्रतिमा वा स्कम्भ बनाया है। अथर्व ८।९ तीन ऋषियोंने देखा है। पहला अथर्वा= अचलायमान = जो किसीसे चलाया वा सरकाया नहीं जाता = जो अपनी निजी शक्तिसे चलता चलाता है—यही स्वयंभू सूर्य है।

दूसरा ऋषि कश्यपः = पश्यकः = कः प्रजापतिको देखने- दिखाने, जानने- जनवानेवाला = सूर्य वा सूर्य किरणें।

तीसरा ऋषि है— सर्वे ऋषयः = सब सूर्यकिरणें। ये तीसरे ऋषि ही विशेषतः उपरोक्त मंत्रके द्रष्टा = जानने जनवानेवाले = उपदेष्टा हैं। यह किरणोंका बना हुआ ज्योति- र्लिंग वा शिवलिंग ही ग्रहोंपरसे सूर्यका सन्तुलन कर रहा है- प्रतितोल वा स्कम्भ बना है और ये सूर्यकिरणें उपदेश किस देवता = विषयका करती हैं ? विराट् = विराज् = चमकने = चमकानेवालेका = सूर्यका ! प्रमाण लीजिए—

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ॥

॥ ऋ० १०।९०।५ ॥

अर्थ— (तस्मात्) उस सहस्रशीर्षा पुरुषसे [विराट् अजायत) चमकनेवाला = सूर्य उत्पन्न हुआ. और (विराज अधि) सूर्यके आधीन = सूर्यसे (पुरुषः) वह सहस्रशीर्षा पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

इसका आंग्ल अनुवाद देखिये—

From him called purusha, was born Viraj. And from Viraj was Purusha produced.

[Monier Williams in Indian Wisdom Ed. 1875, P. 24]

पादटीप ३ में आप लिखते हैं— This is tantamount to saying that Purusha and Viraj are in substance the same.

ठीक यही वेदका अभिप्राय है ! वेदकी इस वर्णन शैली के अनुसार कहीं तो आकाश, वायु, अग्नि, आपः, पृथिवी सूर्यसे उत्पन्न दिखाई गई हैं, और कहीं तो सूर्य स्वयं इनसे उत्पन्न होता बताया गया है । ये दोनों विधान सुसंगत हैं !! पहलेका अर्थ है— ' प्रकृतिके पांचों भूत सूर्य शक्तिसे प्रकट होते हैं, ' दूसरेका अर्थ है— ' साकार स्वयम्भू सूर्यका शरीर इन पांचों तत्वोंसे बना है ।'

सारांश, ऐसे वर्णन सूर्यको सृष्टिका अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध करते हैं । जो सम्प्रदाय इस वैदिक सिद्धान्तको नहीं मानते, जो सूर्यको ही परमेश्वर नहीं जानते उन्हें उक्त प्रकारके मंत्रोंका अर्थ करते बडी कठिनता प्रतीत होती है ।

ऋषि-देवतापर इतना विचार करनेका परिणाम यह निकला कि सूर्य-किरणोंका बना हुआ यह सूर्यसे अत्यंत महान ज्योतिर्लिंग वा स्कम्भ सूर्य तथा ग्रहों आदिके बीचोंबीच रहकर उनका सन्तुलन करता हुआ, अपने प्रवाही स्वरूपको दिखाता हुआ सूर्यको ही सृष्टिका अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध कर रहा है । ग्रहों आदिसे परे कहां-तक इस प्रतिमा वा स्कम्भका प्रभाव है, यह अबतक जाना नहीं गया है ।

३. सान्त सूर्यकी अनन्त प्रतिमाकी ज्योतिषविज्ञानी कल्पना

इस लेखमालामें हम सूर्यको ही जगतकर्ता जगन्नियन्ता परमेश्वर सिद्ध कर रहे हैं, निराकार परमेश्वरको नहीं ! परमेश्वरको अनन्त समझा जाता है परंतु सूर्य सान्त है ! अतः शंका होगी कि सूर्य परमेश्वर नहीं हो सकता ! परंतु घबरानेका कारण ही नहीं, इसलिए कि वेदने पूर्व ही सिद्धान्त निश्चित कर रखे हैं । जो वेद कहे वही वैदिक धर्मियोंको मानना उचित है । पाठको ! सान्त ६ फुटके मनुष्यकी शक्तियोंका भी अन्त आजतक कोई पा नहीं सका, फिर भला सूर्य शक्तियोंका अन्त कौन पा सकेगा ? सूर्य सान्त दीखते हुए भी अनन्त है । आगे आगे रहस्य खुलते जाएंगे ।

वेदादेश— जहांतक आकाश सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे व्याप्त है, वहांतक विश्वमें प्रकट होनेवाले पुरुष = वैश्वानर = सूर्यकी प्रतिमा है ॥ अथर्व ८।९।६ ॥

सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण = Gravitation की लपेटमें सारे ग्रह और धूमकेतु आते हैं । यहां ग्रहोंका विचार करेंगे, अंतिम और सबसे दूरका ग्रह Pluto = प्लूतो सन १९३० में शोधा गया है । इससे परे और कितने ग्रह हैं, इसकी कल्पना तो आजके बडे बडे पाश्चात्य ज्योतिष विज्ञानको भी नहीं ! अत. इसीको दूरका ग्रह समझकर सूर्यकी प्रतिमाका अनुमान लगाते हैं ।

सूर्यसे दूरके अन्तिम चार ग्रहोंका कोष्टक

क्रम	नामग्रह	कब शोधा गया	सूर्यसे दूरी मीलोंमें	६-७, ७-८, ८-९ के अन्तर मीलोंमें
६	शनिग्रह	—	८८,६०,०००००	——
७	यूरेनस	१७८१	१,७८,१०,०००००	८९,५०,०००००
८	नेपच्यून	१८४६	२,७९,१७,५०,०००	१,०१,०७,५०,०००
९	प्लूतो	१९३०	३,६४,०००००००	१,०४,८२,५०,०००

[Funk and Wagnall's New Standard Dictionary Edition 1942 से उद्धृत]

शंका — वै० धर्म मार्च १९५२ के अंकमें पृ० ६८ पर आपने शनि ग्रहको सूर्यसे ७ वां नंबर दूर रहनेवाला ग्रह माना है और उपरोक्त कोष्टकमें आप इसे ६ ठा नंबर दे रहे हैं सो कैसे ?

समाधान — वहां हमने ५ वीं माला सैंकड़ों छोटे छोटे ग्रहोंकी = Minor Planets or Asteroids की जो गणना की है, उसे पाश्चात्य ज्योतिषी ग्रहोंमें नहीं गिनते, अतः मार्चके वैदिक धर्ममें ग्रहोंका क्रम निम्न प्रकार बदलना चाहिए--

५ बृहस्पति = Jupiter, ६ शनि, ७ यूरेनस, ८ वां नेप्चून.

इन ग्रहोंमें प्लूतोका समावेश इसलिए नहीं है कि इसका शोध २१ जनवरी १९३० को श्री C W Tombaugh जीने लगाया है, और हमने उपरोक्त ग्रह १ से ८ तक सन् १९११ में छपे Pear's Cyclopaedia से लिए थे, इसी प्रकार पाठक सूर्यसे ग्रहोंकी दूरियोंमें भी भिन्नता पाएंगे, आज जो आंकडे दिए जा रहे हैं, उन्हें इसलिए ठीक समझने चाहिए कि निकट भूतमें छपे हैं।

अब कोष्टकको देखते हुए, और प्लूतो ही सूर्यसे अन्तिम दूरीका ग्रह है, ऐसी कल्पना करते हुए, वैश्वानर सूर्यकी प्रतिमा का अनुमान कुछ निम्न प्रकार लगाया जा सकता है—

१. सूर्यसे प्लूतोंकी सरासरी दूरी सूर्यकी एक ओर— ३८४०००००००
२. ,, दूसरी ओर— ३८४०००००००
३ बीचमें सूर्यका व्यास मील— ८६४०००
४ कोष्टकको देखिये-ग्रह सं. ६-७ में जो अन्तर है, उससे ७-८ का अन्तर ११,५७,५०,००० मील अधिक है और ७-८ में जो अन्तर है, उससे ८-९ का अन्तर ३,७५,००००० मील अधिक है। अन्तर बढते जाते हैं, परन्तु कल्पना कीजिये कि प्लूतोंसे परे सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिका प्रभाव अधिक नहीं ३,७५,००००० मील ही है। अब प्लूतोसे परे सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिकी सीमा सूर्यकी एक ओर होगी मील— ३७५०००००
५. प्लूतोसे परे सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिकी सीमा सूर्यकी दूसरी ओर होगी मील— ३७५०००००
६. बीचमें प्लूतोंका व्यास मील— ८०००

सबका योग= वैश्वानरकी प्रतिमाका व्यास, मील— ७,७५,५८,७२,०००

पाठको ! यह ७ अब्ज ७५ कोटि ५८ लाख ७२ सहस्र मील व्यास वैश्वानर वा सूर्यकी प्रतिमाका अनुमान प्लूतोको अन्तिम ग्रह मानकर लगाया गया है। ८ लाख ६४ सहस्र मील व्यासवाले सूर्यकी प्रतिमा= परितोलका इतना विस्तार है। जो लोग प्रतिमा तथा मूर्ति पूजाको एक जानते और वेदविहित मानते हैं वह इस महान वैदिक प्रतिमा की पूजा करें।

अब प्रतिमा पदपर प्रकाश डालनेवाले कुछेक उद्धरण आंग्लभाषाके शब्दोंमें देखिए—

१. Sun= सूर्यके विषयमें लिखा है- The heavenly body that is most-conspicuous from the earth, being the centre of attraction and the main source of light and heat in the solar system : regarded by astronomers as a star ·· ··· It is said that the sun has an influence on the terrestrial magnetism, and that the polar magnetic field of the sun, following the streamtines visible in the corona, reaches the earth and there affects the earth's magnetism.

२. Gravitation= गुरुत्वाकर्षणके अर्थोंको चार उदाहरणों द्वारा निम्न प्रकार खोला है—

Gravitation I. The force with which all bodies attract each other, the tendency

of every particle af matter in the universe toward every other particle; also the law that expresses the action of this force.

2. The act of gravitating or its effect.

3. Hence mental or moral tendency or movement toward some particular object.

Example— There is a natural gravitation of souls which attracts them to mighty personalities

4 Philology= भाषाशास्त्रमें- The tendency of a strong sound to absorb a weaker one. ×

The Solar repulsion is from 12 to 15 times as great as the gravitational attraction.

[From Funk and Wagnalls New Standard Dictionary of the English Language— Edition 1942].

४. सूर्यका गुरुत्वाकर्षणादि शक्तियोंसे व्याप्त आकाश ही सूर्यकी 'प्रतिमा' है।

१ शंका — आकाश तो वैश्वानर वा सूर्यकी प्रतिमा तब सिद्ध होगा, जब आकाशमें सूर्यके कुछेक गुण उतरे हुए दीख पड़ेंगे। आकाशमें इससे अधिक सूक्ष्म निराकार परमात्माके गुण तो उतर सकते हैं, परंतु साकार सूर्यके कदापि नहीं! अतः आकाश 'निराकार' की प्रतिमा ही हो सकता है, साकार की नहीं।

समाधान — चमकना, तेजस्विता, सुंदरता ये साकार सूर्यके गुण हैं, 'निराकार परमात्मा' के नहीं, और ये सब आकाशमें सूर्यसे उतरे हैं, यथा—

आ = सब ओर+काश् [काश-इय-ते, काशित] चमकना, तेजस्वी वा सुंदर दीखना। दृष्टिगोचर होना = To appear, be visible।

काश— Appearance दिखलावा। काशिन् Shining = चमकनेवाला।

काशिः— काशी = बनारस। सूर्य ॥ आपटे ॥

पाठको! जो सब ओरसे चमके, तेज फैंके, सुंदर दीखे वह एक ही पदार्थ है जिसे सूर्य वा आकाश कहते हैं। इन्हींसे 'प्रकाश' संबंधित है। काशी वा प्रकाशी = स्वयं प्रकाशी नाम सूर्यका है, अतः तीर्थस्थान 'काशी' कहलाया।

लीजिए! अब जब कि निराकार आकाशने ही साकार सूर्यका नाम स्वयमेव धारण कर लिया और उसके गुणोंका ग्रहण किया है, तो 'निराकार परमात्मा' को तो आकाशमें पग धरनेकी भी जगह न रही! पुन सिद्ध हुआ कि आकाश साकार सूर्यकी= वैश्वानरकी प्रतिमा है। 'निराकार परमात्मा' का तो अस्तित्व ही वेदसे सिद्ध नहीं होता!

२ शंका —युक्ति तो बढिया दीखती है, परंतु पदच्छेद न करते हुए आकाश का क्या अर्थ है, सो बताइए।

समाधान —आकाश् = To shine = चमकना। To view = देखना, विचार करना। To recognize पहचानना ॥ आपटे ॥

लीजिए! यहां आकाशने सूर्य परमेश्वरके 'देखने, विचार करने और पहचानने' इन तीन अधिक गुणोंको भी धारण कर लिया है। अब तो अ० ८।५।६ के अनुसार जो सूर्यके गुरुत्वाकर्षण शक्तिका आकाशमें उतरना दिखाया गया है वह युक्ति-युक्त मानिए। और देखिए—

आकाशः— शं [समंताद्काशंते सूर्यादयोऽत्र] The Sky = आकाश = अन्तरिक्ष, तथा द्युलोक। सूक्ष्म द्रव्य पदार्थ जो विश्वको व्याप रहा है [निराकारवादी ही बताएं कि यह आकाश है वा उनका कल्पित 'निराकार परमात्मा'— ले.] वैशेषिकोंके ९ द्रव्योंमेंसे एक। यह शब्दका आधार है— शब्दगुणमाकाशं। श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वं ॥ शिशुपालवध ॥ अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं (आकाशं) विमानेन विगाहमानः ॥ रघुवंश १३।१ ॥ Space =

× शब्द आकाशका गुण है और आकाशको वेदने ज्येष्ठ ब्रह्म माना है- देखो अ० १०।८।१६. शब्दसे सृष्टयुत्पत्ति वेद और बाइबलने मानी है। अतः महाप्रलय भी इसी शब्द वा आकाशमें होगा- ऐसा भास यहां हो रहा है।

अवकाश । Place = स्थान । ब्रह्मा । Light = प्रकाश । A hole = छिद्र । dot, Zero - शून्य ॥ आपटे ॥

स्पष्टीकरण— १ (समंतात्) सब ओरसे (अत्र सूर्य आदय.) जहां सूर्यादि तारागण (आकाशंते) प्रकाशते हैं, वह स्थान आकाश कहलता है, इसे 'द्युलोक' भी कहते हैं।

२ वैशेषिकोंके ९ द्रव्योंमें भी 'निराकार परमात्मा' को स्थान नहीं ! कल्पित जो हुआ।

३ शब्द आकाशका गुण है, शब्दसे सृष्टि रचना बाइबल और कुर्आन दोनों मानते हैं, परंतु शब्दको उचारनेवाला परमेश्वरको जानते हैं। यह परमेश्वर आकाश ही है, बृहदारण्यकोपनिषद् १।१।५ में भी वाचा = वाणीसे जगदुत्पत्तिका वर्णन आया है, परंतु आकाशसे सृष्ट्युत्पत्ति वैदिक वाङ्मयमें सर्वत्र मानी गई है, उदाहरणार्थ--

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिंगम् ॥

॥ वै० द० २।१।२० ॥

अर्थ— सृष्ट्युत्पत्तिके समय इस चराचर जगतका (निष्क्रमणं) भीतरसे निकलकर बाहर आना और महा-प्रलय आनेपर उसका (प्रवेशनम) पुनः भीतर समा जाना (इति) यह सारा खेल (आकाशस्य लिंगम्) आकाशकी निशानी = चिन्ह, आकाशको पहचाननेका लक्षण है ॥२०॥

स्पष्टीकरण—आकाशके इस निष्क्रमणं-प्रवेशनम् को सक्रिय पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने आज तो हमसे अधिक पहचाना, Radiophony तथा Wireless Telegraphy = रेडिओ और बेतारकी तार इसीके परिणाम हैं। 'बाहर आना' और 'भीतर घुसना' किसी स्थान, प्रकाश, बिल छेद, से ही होता है, इसी कारण ये चारों नाम आकाश को दिए गए हैं। 'शून्य' गणितमें एक बिंदु = Naught = कुछ-नहीं सा पदार्थ है, परंतु जो इसके सहवासमें आता है, उसका मूल्य दस गुना बढा देता है ! ऐसा जो महा-प्रतापी 'शून्य' सो 'आकाश' का ही नाम है ! सत्यार्थ प्रकाश ८ वें समुल्लासमें शून्यसे सृष्ट्युत्पत्ति माननेवालोंको नास्तिक समझा गया है— परंतु शून्य नाम आकाशका ही तो है !

सृष्टिका उत्पादक ब्रह्मा है, ऐसा समझा आता है, परंतु कोशकार कहते हैं कि 'ब्रह्मा' नाम आकाशका ही है ! इतने विवेचनसे सृष्टिका आकाशसे उत्पन्न होना और उसीमें लय पाना सिद्ध होता है। प्रतिदिन असंख्य जीव इस आकाश वा सूर्यकी व्यापकतामें उत्पन्न होते हैं, असंख्योंका पालन पोषण वर्षोंसे होता रहता है और इनमेंसे असंख्योंकी मृत्यु भी होती रहती है।

१ शंका— आपने अद्भुत् कौशल्यसे सारे आकाशको समेटकर छोटेसे सूर्यमें ला बिठाया है, परंतु प्रमाण ?

समाधान— १. सारा कौशल्य वैदिक परिभाषाका है, आकाशमें लाखों सूर्य समाए हुए हैं, इसी कारण अ० १०।८।१६ में आकाशको ज्येष्ठब्रह्म नाम दिया है। भाष्यकारोंने बिना सोचे 'ज्येष्ठ' का अर्थ 'श्रेष्ठ' कर डाला। 'ज्येष्ठ भ्राता वा पुत्र' सदा 'ज्येष्ठ भ्राता वा पुत्र' नहीं होता। इसी प्रकार आकाश ज्येष्ठमहान् होते हुए भी सूर्यसे गुणोंमें 'कनिष्ठ' ही है। यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे के अनुसार यद्यपि हमारा शरीर हमारी आत्माकी माप-तोल-- विस्तारसे असंख्य गुणा 'ज्येष्ठ' है, तथापि उसके सारे बडप्पनका मूल आत्मा ही है। यही भाव अ० १०।८।१५ का है। आकाशकी 'ज्येष्ठता' इसीमें समायी है कि वह छोटेसे सूर्यके अनेक गुण-कर्म-- स्वभावोंको अपने भीतर धारण करके यशस्वी हो रहा है—दूसरे शब्दोंमें वह सूर्यकी प्रतिमा बन चुका है।

२. आकाशके उपरोक्त सारे अर्थ 'आकाश' से अधिक सूर्यमें घटते हैं, यह एक आश्चर्य तो है, परंतु इसका कारण वैदिक परिभाषा है, 'आत्मा' पदके १७ अर्थ तो आपटेजीके कोशमें ही हैं, परंतु और अधिक भी होंगे, इतने अर्थोंको देखकर मनुष्य चकरा जायगा, अतः वेदने वा० य० अ० ३२ के आरंभमें ही स्पष्ट कर दिया कि सूर्य ही अनेकों देवोंके नामोंमें स्वयमेव परिणित हो गया है, यथा—

ऋषि स्वयम्भू ब्रह्म। देवता परमात्मा, पुरुषः, पर ब्रह्म वा।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

॥ वा० य० ३२।१ ॥

ऋषि (स्वय+भूः) स्वेच्छासे उत्पन्न और स्वसामर्थ्यसे विद्यमान (ब्रह्म) ईश्वर+जीव+प्रकृति पुञ्ज = मिलकर

देखनेवाले सूर्य अपने विषयमें आप ही उपदेश कर रहे हैं कि—

अर्थ— (तत्) वह आत्मा, परमात्मा, पुरुष वा पर-ब्रह्म (एव) ही स्वेच्छासे (अग्निः) अग्नि बना है, (तत् आदित्यः) वही सूर्य बना है, (तत् वायु) वही वायु है, (तत् उ) वही निश्चयसे (चन्द्रमाः) अनेकों चंद्रमा बना है। कारण (तत् एव शुक्रं) वही जगद्बीज पुरुष है, और (तत् ब्रह्म) वही ईश्वर+जीव+प्रकृतिका गोला है, (ता आपः) वही सर्वव्यापी आकाश बना है, (स प्रजापतिः) इसी कारण वह कः = प्रजापति = प्रजापालक, प्रजास्वामी भी है ॥ १ ॥

भावार्थ— मंत्र सूर्यसे सृष्ट्युत्पत्तिका वर्णन कर रहा है। सूर्य अनश्वर है--ईश्वर+जीव+ प्रकृति पुञ्ज है, सृष्टिके लिए सर्व प्रथम स्थान चाहिए, अत सूर्यने आकाश रचा, फिर उसमें वायु छोड़ा, फिर अग्निको प्रकट किया, फिर जलको, फिर पृथिवीको, फिर चंद्रमाको। पश्चात् पृथिवीपर प्रजा उत्पन्न करके वह सूर्यदेव ही उनका एकमेव स्वामी बन बैठा। इस भावार्थकी पुष्टि तैत्तिरीयोपनिषद्के निम्न मंत्रसे होती है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः
आकाशाद्वायुः। वायोरग्नि....

वेद और उपनिषद् दोनों आकाशको सूर्यसे उत्पन्न बता रहे हैं, अतः जिस प्रकार पुत्र पिताके नामको धारण करता इसी प्रकार आकाश भी सूर्यके नामोंको धारण कर रहा है। अब सूर्य पिता बन गया और ज्येष्ठ ब्रह्म उसका पुत्र।

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः ।
॥ मनु २।१५३ ॥

माता-पिता ही पुत्र बनकर उत्पन्न होते हैं, ऐसा अ० १४।२।३७ में आया है। सुविज्ञ पाठक इन वैदिक सिद्धान्तोंसे परिचित हैं, अतः आकाशका सूर्यकी प्रतिमा बनना वे सहज ही समझ सकते हैं, आकाशने साकार सूर्यके गुणोंको धारण किया है, 'निराकार परमात्मा' के गुणोंको नहीं—कारण उसका अस्तित्व ही अभी सिद्ध नहीं हुआ है। और देखिए—

ऋषि वेनः। देवता आत्मा, ब्रह्म।

यो देवानां नामध एक एव ॥ अ० २।१।३ ॥

अर्थ— (यः) जो आत्मा, ब्रह्म वा सूर्य (एक एव) अकेला ही (देवानां) देवोंको (नामधः) अपने नाम धारण करा रहा है ॥ ३ ॥

स्पष्टीकरण— ऋ० १०।८२।३ तथा वा० य० १७।२७ में 'नामधा' = नाम धारण कराने = देनेवाला ऐसा भेद है। सिद्ध हुआ कि सूर्य सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। इसीलिए उत्पन्न जगतके देव अपने जनकके नामको धारण करते हैं। अतः आकाश ने भी सूर्यके नामको उसके गुणों-सहित सूर्यसे प्राप्त किया अर्थात् वह उसका प्रतिमा = उलटतोल बना।

सन्तान माता-पिताकी प्रतिमा है, यह ठीक है, परंतु माता पिता स्वयमेव कः = प्रजापति = सूर्यकी प्रतिमा (अंश रूपमें) है। तभी तो पिता नवजात बालकको कहता है—

कोऽसि कतमोऽस्येषोस्यमृतोऽसि ॥
साम. मंत्र ब्राह्मण प्र० १, खं० ५, मं. १४।

अर्थ— हे बालक तू (कः असि) सूर्य है (कतम) अत्यंत आनंददायक है (एष. असि) आनेजानेवाला = बारंवार उत्पन्न होनेवाला भी सूर्यके समान ही है, और (अमृत असि) और सूर्यके समान ही तू अमर, नाश रहित भी है ॥ १४ ॥

स्पष्टीकरण— हमने धारा ४ में आकाशको सूर्यकी प्रतिमा सिद्ध किया—आकाशसे सृष्ट्युत्पत्ति सिद्ध की—आकाश ही नहीं, अपितु जगतके सभी देव सूर्यके नामोंको धारण करनेवाले हैं ऐसा सिद्ध किया, और अन्तमें दिखाया कि स्वयं मनुष्य भी सूर्यसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यके गुणोंको धारण कर रहा है। सारांश पुनः हेरफेरसे वही बात सामने आयी कि सूर्य ही सृष्टिका अभिन्ननिमित्तो-पादान कारण है। आकाश सूर्यकी प्रतिमा और आकाशसे सृष्ट्युत्पत्ति-- अर्थात् गौण रूपमें सारा चराचर जगत ही सूर्यकी प्रतिमा है।

मंत्र १४ 'संस्कार चंद्रिका' के जातकर्म संस्कारमें आया है, परंतु वहां अर्थ कुछ और ही हैं। कारण आर्य-समाजी विद्वान न तो देवता अनुसार अर्थ लगाते हैं, और न सूर्यको सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण समझते है।

४ शंका— ' प्रतिमा ' पदकी व्युत्पत्ति बताइए।

प्रतिमा— [प्रतिमीयते यया सा। प्रति+माङ् माने+ क्विप्] ॥ पाणिनि ३।३।१७८ ॥

अर्थ— (यया) जो वस्तु मूल पदार्थको (प्रतिमीयते) उलटकर मापती तोलती, बनाती, वा प्रकट करती है (सा) वह वस्तु उसकी प्रतिमा है ॥ १७८ ॥

स्पष्टीकरण— अ० ८।९।६ के अनुसार ग्रहों, धूम केतुओंको लिए हुए, जितना आकाशका क्षेत्रफल सूर्यकी प्रदक्षिणा कर रहा है, वह सब सूर्यकी प्रतिमा है।

५ शंका— आप सूर्यको सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मानते हैं, और जितना आकाश इस सूर्यसे उत्पन्न सृष्टिको लपेटे हुए है, उससे परे तक भी सबको सूर्यकी प्रतिमा जानते हैं, और इस प्रतिमाको भी स्वयंभू सूर्यसे उत्पन्न अ० ८।९।६ के अनुसार समझते हैं। अब एक ऐसा प्रमाण दीजिए जिससे सूर्यका स्वेच्छासे विश्वकी प्रतिमा बनना सिद्ध होता हो।

समाधान—हमने ' प्रारंभिक शब्द ' के तले लिखा है कि " न तो सूर्य इन पृथिव्यादि ग्रहोंको खैंचकर अपनेमें मिलाता है, और न ये ग्रह सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिका उलंघन करके किसी दूसरी ओरको जा सकते हैं। " इसका अर्थ यदि कोई ऐसा करे के सूर्य सारेका सारा सृष्टिमें वा प्रतिमामें परिणित हो चुका है वा सूर्य तथा उसकी प्रतिमाका बल समान है, तो ऐसा अर्थ वेद विरुद्ध होगा यथा--

ऋषि नारायणः। देवता पुरुषः।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
॥ ऋ १०।९०।३ ॥

अर्थ— (यस्य) इस सूर्य पुरुषकी ही (एतावान् महिमा) यह सब महिमा है। परंतु (अतः ज्यायान्) इस महिमासे बहुत ही बडा (पुरुषः) वह सूर्य पुरुष है। कारण (अस्य पादः) उसका एक चतुर्थांश ही (विश्वा भूतानि) जगतके चराचर भूत हैं, और (अस्य त्रिपात्) उसके तीन चतुर्थांश (दिवि अमृतं) द्युलोकमें अमर रहते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ- सूर्य सान्त है, परंतु उसकी शक्तियां अनन्त हैं। अब आपकी शंकाका समाधान मार्च १९५१ के अंकमें बडे विस्तारसे पढनेकी कृपा करें, विशेषतः निम्न मंत्रभागके अर्थको देखें--

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव ॥
॥ ऋ. २।१२।९, अ० २०।३४।९॥

अर्थ-- जो विश्वकी (प्रतिमानं) विश्वका निर्माण करनेवाला, मापनेवाला वा प्रतितोल= Counter balance (बभूव) स्वेच्छा व स्वसामर्थ्यसे बन गया है॥९॥

स्पष्टीकरण— ऋ० १०।९०।३ के अनुसार सूर्यकी अपेक्षामें उसकी सृष्टि वा प्रतिमा एक चतुर्थांश ही है। अतः प्रतिमा कदापि मूलकी बराबरी कर नहीं सकती ! परंतु मुकाबलेमें डटी दीख पडती है, कारण सूर्य स्वेच्छासे ऐसा भास करा रहा है।

५. वैदिक ' कः ' का ' काफ ' बनकर कुर्आनमें अवतरण

१ पूर्व परिचय— पाठकोंने देखा है कि ' आकाश ' में से ' आ ' उपसर्ग निकालनेसे शेष जो काश रहता है, अर्थोंकी सारी महिमा उसीकी है—कारण यह शब्द सूर्य वाची है, और सूर्य परमेश्वर है। आगे चलकर यह 'काश' भी ' कः ' में विलीन हो जाता है। ' प्रजापति ' के अर्थमें देखो वा० य० ३२।१ यहां कः का दूसरा अर्थ है आकाश। सारांश आकाश, काश, क. तीनों सूर्य = परमेश्वर तथा ' आकाश ' के भी नाम हैं! आज हम अरबी उर्दू डिक्शनरीके आधारपर दिखाना चाहते हैं कि अरबी भाषा तथा कुर्आनका ' काफ ' कः के अर्थोंको ही लिए हुए है।

कई वर्ष पूर्व लेखकने कुर्आन-बाइबलमें सूर्योपासना नामक लेखमाला वैदिक धर्म में चलाई थी। सितम्बर १९४६ में उसका खण्ड ९ छपा है। उसमें इस वैदिक कः= अरबी बडा काफ का कुर्आनमें अवतरण जिस प्रकार बताया गया था, उसके निम्न परिवर्धित शीर्षकोंसे पाठक विवरणका अनुमान लगालें—

१, क= अरबी, फारसी, उर्दूका ' बडा काफ ' अलिफ्, लाम्, मीम् का तुग्रा= Monogram, मुस्लिम भाष्यकारोंको दीखा, परंतु यह अ, उ, म=ॐ था।

२, यह 'अलम्' तथा 'क' समानार्थक सूर्य वा अल्लाहके नाम है।

३, भाषा विज्ञानसे भी 'क' सूर्य है. अतः कुर्आनकी २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ इन ६ सूरतोंकी प्रथम आयत यदि वेदका अलम् शब्द समझा जाय अथवा अलिफ्, लाम् मीम्के दर्शन वेदके क अक्षरमें किए जाएं, तो दोनों अवस्थाओंमें सूरतोंके शीर्षक तथा आयतोंका पूर्वापर संबंध ठीक बना रहता है।

४. कुर्आनकी ५० वीं सूरत 'काफ' पर विचार। स्वयं कुर्आनके भाष्यकार 'कः' = अरबी 'बडे काफ' को सूर्य सिद्ध करते हैं। इस सूरतमें निम्न बातोंपर प्रकाश पडता है–

पुनर्जन्म, जिसे मुसलमान पुनरुत्थान समझते हैं। काफ= सूर्यसे १०० का क्या संबध ? संस्कृत संख्यालिपिमें 'क' का मूल्य १ क्यों। 'काफ' तथा 'क' में शेषशायिन् विष्णु, सूर्यकी संहारक शक्ति शेषनाग तथा शिवलिंगके दर्शन। मुस्लिम विद्वान 'काफ' के चक्करमें।

५. जनवरी १९४७ के अंकमें इसी सूरत काफका विचार आगे चला है और कुर्आनमें वैदिक पर्वतोपासना सिद्ध की गई है, जिसके अन्तर्गत निम्न विषयोंपर प्रकाश पडा है–

'कोहकाफ' = मर्वा = मेरु पर्वत सूर्य ही है। कुर्आन २।१५८ में वर्णित 'मर्वा' पर्वत=मेरु पर्वत ॥

आज वैश्वानरकी प्रतिमा 'आकाश' सिद्ध करते हुए पुनः प्रसंगवश इसी अरबीके बडे काफकी छानबीन करनेका अवसर आया है। काश्, आकाश तथा कः के अर्थोंको लेकर ही यह बडा काफ बना है! किस प्रकार सो देखिए—

कः=काफ बडा = सूर्य वा परमेश्वरके अर्थोंमें-

१. अरबी संख्यालिपिमें बडे काफका मूल्य १०० इसलिए है कि अ० १।३।५ में सूर्यका गुणवाची नाम 'शतवृष्ण्यः,' ऋ० १०।३३।३, अ. ६।८२।१, वा० य० ३।४९ आदि पचासों मंत्रोंमें इन्द्रकी उपाधि 'शतक्रतुः' आयी है। इससे बडा काफ परमेश्वर है- सूर्य है- आकाश है ऐसा सिद्ध हो रहा है।

२, आकाश वा सूर्य शेष=विनाशसे बचा हुआ है ऐसा वैदिक धर्मी मानते हैं। अरबीमें बडे काफसे लिखे 'कि' का अरबी पर्याय है 'बका' = बचा, बाकी, शेष।

३. बडे काफसे बना शब्द कब्ज़ा= दस्ता, मूठ, किसी वस्तुका वह भाग है, जहांसे वह उठाई जाती है। अरबीमें कब्ज अल्लाह का अर्थ है 'खुदाने इसकी रूह = आत्मा कब्ज करली-उसे मृत्यु द्वारा उठा लिया। [कः = सूर्यसे उत्पत्ति और मृत्यु सिद्ध हो रही है]

४. कबिल= बच्चा जनाना, दायीपना करना [कः से सृष्ट्युत्पत्ति]

५. कादिरू, कद्रिरू= सर्व शक्तिमान। ६ कुद्दूस = खुदाका गुणवाचक नाम।

७ कादिम् = आ पहुंचनेवाला, आनेवाला, यात्रासे वापस आनेवाला, भविष्यत [सूर्य] अलकदीमु=हमेशा कायम रहनेवाला = खुदा [७–८ सूर्यको खुदा सिद्ध कर रहे हैं खुद= स्वयं+आ= आनेवाला, अर्थात् प्रतिदिन आनेवाला और सदा कायम = सत्य वही है] ९ किद्रू = जड, मूल जिससे शाखाएं निकलें [स्कम्भ = सूर्य], १० करूनु रूह, जान। ११ काज़ि= काजी, न्यायकारी, १२ कफ्फर इकट्ठा करना, जमा करना [सृष्ट्युत्पत्ति] १३, अक्फर = सूना करना, प्राणी रहित होना [प्रलय] १४ कल्ल = पृथिवीपरसे उठाना, ऊपर उठाना [सूर्य किरणोंके कार्य, अर्थात् जीवोंको मृत्यु देना, जलको खैंचना, दुर्गंधको उडाना]।

१५ वेदके अनुसार सूर्य ही परमेश्वर है, और मनुके अनुसार प्रातःकी संध्या पूर्वकी ओर मुख करके और सायंकालकी संध्या पश्चिमकी ओर मुख करके करनी चाहिए, यथा–

> न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपासते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ मनु २।१०३ ॥

अर्थ—जो उपासना करते समय पूर्वकी ओर मुख करके नहीं बैठता वा जो पश्चिमकी ओर मुख नहीं करता वह सम्पूर्ण द्विजोंके कर्मोंसे शूद्रवत् बहिष्कार्य है ॥ १०३ ॥

स्पष्टीकरण— प्रातः सायं क्रमशः पूर्व पश्चिमकी ओर मुख करके संध्या करनेका विधान इसलिए है कि मनु महाराज वेदके अनुसार सूर्यको ही परमेश्वर समझते थे निराकार परमात्माको नहीं! निराकारवादी ऋषि दयानन्दके अनुसार किसी भी ओर मुख करके संध्या की जा सकती है, परंतु इसे मनु नहीं मानते।

मनुके अनुसार तो पूर्व वा पश्चिममेंसे किसी एक ओर मुख करके उपासना करनेवाला भी पूर्ण द्विज और वैदिक धर्मी आर्य है ! अतः मुसलमान वैदिक धर्मी और आर्य हैं कारण चीन, जपान, ब्रह्मा और भारतके मुसलमान पश्चिमकी ओर मुख करके नमाज [नमः+अजः= सूर्योपासना] करते है, कारण मक्का [मः+कः = काल प्रजापति] का मंदिर इनके पश्चिममें है। आफ्रिकाके अनेक देशोंके मुसलमान पूर्वकी ओर मुख करके नमाज पढते हैं कारण मक्का इनके पूर्वमें है। इराक, ईरान तथा मिश्रके मुसलमान दक्षिणकी ओर मुख करके नमाज पढते हैं कारण मक्का दक्षिणमें है। ये तो हुए, मक्केके मंदिरकी ओर मुख करके नमाज पढनेके परिणाम। परंतु कुर्आनकी आज्ञा वही है जो मनुकी है, यथा—

पूर्व और पश्चिम दानों अल्लाहके हैं, अतः जिस ओर भी मुख करो अल्लाह सामने रहता है ॥ सूरत २ आयते ११५ ॥

स्पष्टीकरण— यह पूर्व--पश्चिम=Eastern Hemisphere and Western Hemisphere से संबंध रखनेवाला अल्लाह सूर्यके अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? वैदिक धर्मसे कितना घनिष्ट संबंध इस्लामका है ! परंतु कितने लोग समझते हैं ? अस्तु ! यही विषय अरबीका बड़ा काफ आगे चलाता है--

१६ कब्ल = पहला, पूर्वीय [सूर्य] १७ किब्ल: वह दिशा जिस ओर कोई मुख करे (विशेषतः नमाज पढते समय), पूर्व वा पश्चिमकी ओर मुख करनेका विस्तार कुर्आनमें ही पाठक देखें। १८. किद्वं = धड वा तना जिससे शाखाएं निकलें = स्कम्भ, १९. कुत्ब = धुरा, कील।

कः = अरबीका बड़ा काफ आकाशके अर्थोंमें

कुछेक बड़े काफसे बनानेवाले अरबी शब्दोंका संकेत यही है, यथा—

कब्बब = कुब्बा वा गुम्मद× बनाना। कुत्ब = वह छिद्र जिसमें धुरा वा धुरी घूमते हैं [आकाश=छिद्र देखिए] मकाबिस, मुकाबिस = आगकी जगह, अग्निका समूह।* कब्ज = पकडना, थामना, मृत्यु देना [आकाशके गुण] इस्तकर = एक अवस्थामें रहना, सत्ता, किसास = जूं का तूं बदला लेना। कस्सासु = कहानी कहनेवाला [शब्द आकाशका गुण जो हुआ] मिक्अार = चौडा गहरा प्याला [बड़े काफका आकार ऐसा ही है] मुकअर= पोला, खोखला, खाली गहरा [शून्य]।

कः = अरबीका बड़ा काफ प्रतिमाके अर्थोंमें

बड़े काफसे बननेवाले कई शब्दोंसे प्रतिमा ध्वनित हो रही है, यथा—

काबल = किसीके सामने खड़ा होना, मुकाबला करना। तकाबल, इस्तकबल शब्दोंके भी यही अर्थ हैं। कब्बान, कब्बन, कब्बानी = एक पलडेकी तुला, एक पलडेकी तुलासे तोलना, एक पलडेकी तुलासे तोलनेवाला-क्रमशः [सूर्य भी एक पलडेकी तुला है जिससे कोटियों मील दूर रहनेवाले ग्रहादि तोले जा रहे हैं !] कादर = परस्पर मापना, आपसमें प्रतिरोध करना, एकका दूसरेसे अनुमान लगाना। काफ = कुर्आनके ५० वें अध्यायका नाम जिसमें 'मरकर जी उठने' = पुनरुत्थान वा पुनर्जन्मका वर्णन है। मौ० मुहम्मदअली काफ = Almighty God = सर्वशक्तिमान ईश्वर ऐसा अर्थ करते है. यही कः प्रजापति वेदका है !

कः = अरबीका छोटा काफ सूर्यके अर्थोंमें

अरबी, फारसी तथा उर्दूमें 'बड़ा' और 'छोटा' ऐसे दो प्रकारके 'काफ' हैं, जो उच्चारकी दृष्टिसे देवनागरीके एक 'क' में समाते हैं। अर्थके दृष्टिसे छोटा काफ भी कुछेक शब्द बड़े काफके समान ही वैदिक सिद्धान्तोंकी ओर संकेत करनेवाले बनाता है, यथा—

× आकाश मनुष्यके शिरपर ऊंचा और चारों ओर उतरता क्षितिजसे मिला हुआ = गुम्मदके आकारका दीखता है ; यही आकार बड़े काफका है। उलट कर देखिए।

* तारागणों = अग्नियोंसे भरा आकाश।

कश्फ = नग्न अवस्था, प्रात्यक्ष्य, इल्हाम = प्रकटीकरण = Revelation [सूर्यसे वेदोंका प्रादुर्भाव तथा परमेश्वरकी प्रत्यक्षता झलक रही है]

कशीफ = बे ढकन, नंगा, खुला हुआ, प्रत्यक्ष [सूर्य]

काशिफ = खोलनेवाला [मुक्त करनेवाला], प्रत्यक्ष करने करानेवाला, देखनेवाला, अधिपति [परमेश्वर सूर्य]।

वेदके 'काश्' पदका अरबी-फारसीमें अवतरण

वेद कः = प्रजापति = सूर्यको परमेश्वर मानता है, तो कुर्आनके आंग्ल भाष्यकार मौ० मुहम्मदअलीजी कुर्आनकी ५० सूरतके शीर्षक ' काफ ' का अर्थ Almighty God = सर्व शक्तिमान परमेश्वर करते हैं ! क. और काफका-वैदिक धर्म और इस्लामका कितना घनिष्ठ संबंध है-परंतु कोई जाने तो। ' काश् ' के संस्कृत अर्थोंसे सूर्य परमेश्वर ध्वनित होता है, यह पाठक देख चुके। अब ' काश ' के अरबी फारसी अर्थ देखिए—

काश् = खुदा करे ! God grant ! [The New Royal Dictionary] यह ' काश् ' छोटे काफसे लिखा जाता है।

शंका— यदि इस्लामके सिद्धान्त वैदिक धर्मसे ही लिए गये हैं तो बताइए कि अरबी, फारसीका बड़ा काफ और छोटा काफ के वैदिक अर्थ क्या हैं, और क्यों हैं ?

समाधान— ' बडा-काफ ' का अर्थ है ज्येष्ठ ब्रह्म '- देखो अ० १०।८।१६, कारण इस आकाशमें लाखों ब्रह्म = सूर्य समाए हुए हैं।

' छोटा काफ ' का अर्थ है ' ब्रह्म '—देखो वा० य० ३२।१ यह ब्रह्म छोटा होता हुआ भी गुणोंमें ज्येष्ठ ब्रह्म = आकाशसे श्रेष्ठ है, उसका प्रतिमा = उत्पादक है, यह ऊपर बताया गया ही है। ' काश ' = सूर्यसे उत्पन्न होनेके कारण ही ' आ+काश ' नाम पाया।

अतः विचारपूर्वक देखनेसे यह छोटे और बडे काफकी कल्पना भी वेदसे ही कुर्आन वा उससे भी पूर्व अरबी फारसी भाषाओंमें उतरी ऐसा प्रात्यक्ष्य होता है। [क्रमश]

ऋग्वेद, मंडल २, सूक्त १२

का हिन्दी रूपान्तर

[ऋषि-गृत्समद्। देवता-इन्द्रः। छन्दस्-त्रिष्टुप्]

(अनुवादक— श्री पाण्डेय कपिलदेवनारायण सिंह)

यो जात एव प्रथमो मनस्वा-
न्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

जो जन्म लेते मानवोंमें अग्रगामी हो गया,
जिसने पराजित देवगणको निज पराक्रमसे किया,
खण्डित धरित्री-स्वर्ग थे, उच्छ्वास जब उसने लिया—
निज श्रेष्ठतासे शक्तिकी, ओ मानवो! वह इन्द्र है ॥१॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंह-
द्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

पृथ्वी तरल जो थी उसे है ठोस जिसने कर दिया,
उडते हुए चर-पर्वतोंको स्थिर-प्रकृत जिसने किया,
विस्तीर्ण जिससे अन्तरिक्ष किया गया, मापा गया,
आधार जिसने स्वर्गको दी, मानवो! वह इन्द्र है ॥२॥

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धू-
न्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥

मारा गया अहि, सप्तनद जिससे स्वतंत्र किया गया,
'वल' के विनाश निमित्त जिसने हाँक गायोंको दिया,
दो प्रस्तरोंके बीच जिसने अग्निको पैदा किया,
जो युद्धमें है नाशकारी, मानवो! वह इन्द्र है ॥ ३ ॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाद-
दर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥

इस विश्वको गतिशीलताके योग्य जिसने कर दिया,
करके गुफामें, दस्युओंका नाश तक जिसने किया,
जिसने बहुतसा धन कि लाखों लाख अरियोंसे लिया,
रणके विजेताकी तरह, ओ मानवो! वह इन्द्र है ॥४॥

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोर-
मुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

जिसके विषयमें शत्रुगण वे, पूछते हो भयप्रवह,
'वह है कहाँ?' करके उपेक्षा बोलते, 'है नहीं वह'
जो शत्रुकी सम्पत्ति हर लेता जुआरीकी तरह,
विश्वास तो अब तुम करो, ओ मानवो! वह इन्द्र है ॥५॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः
सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

देता सभीको प्रेरणा वह, धनी निर्धन जो रहे,
गायक रहे, या कवि रहे, या भिक्षु ब्राह्मण जो रहे,
वह व्यक्ति जिसमें सोमके जो घोंटनेका श्रम सहे—
पाता सदा जिसकी मदद, ओ मानवो! वह इन्द्र है ॥६॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥

अपने अधीन समस्त घोडों और गायोंको किया,
रथ और ग्रामोंपर निजी अधिकार जिसका होगया,
है जन्म सूरज और ऊषाकालको जिसने दिया,
जो कर रहा नेतृत्व जलका, मानवो ! वह इन्द्र है ॥ ७ ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

जिसका कि लडते गरजते दो सैन्य आवाहन करें,
अपने लिये दोनो तरफके शत्रु आमंत्रण करें,
सारथि रथी दो पृथक् भाव लिये जिसे वन्दन करें,
आरूढ रथपर एक हो, ओ मानवो ! वह इन्द्र है ॥८॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

जिसके बिना मानव न पा सकता विजयका मान है,
योद्धा मददके हेतु जिसका कर रहे आह्वान हैं,
जो इस सकल संसारसे भी श्रेष्ठ और महान है,
जिसके कि अच्युत भी डिगें, ओ मानवो ! वह इन्द्र है ॥९॥

यः शश्वतो मह्येनो दधाना-
नमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां
यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

अपराध करते जो, न जिसने मान है उसको दिया,
उन सब किसोंका वज्रसे है बध सदा उसने किया,
जिससे कि उसको छेडने वाला कभी न क्षमित हुआ,
जिसने किया बध शत्रुओंका, मानवो ! वह इन्द्र है ॥१०॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयान स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

चालीस वर्षोंतक सतत् जो पर्वतोंमें रह गया-
उस शत्रु शम्बरका पता मालूम जिसने कर लिया,
सोये हुए शैतान अहिका वध तुरत जिसने किया-
जो था घमंडी ओजका निज, मानवो ! वह इन्द्र है ॥ ११ ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मा-
नवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहु-
र्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

जो वृषभ सम बलवान, जिसमें युक्त सातो रश्मियाँ,
जिसने कि बहनेके लिये स्वच्छन्द नदियोंको किया,
जिस वज्रबाहु बलिष्ठने है रोहिणीका वध किया,
आक्रमण करता स्वर्ग पर जो, मानवो ! वह इन्द्र है ॥१२॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहु-
र्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

जिसकी कि पृथ्वी स्वर्ग करते नित्य प्रति हैं वन्दना,
उच्छ्वाससे जिसके बनें गिरिराज भयकातरमना,
जो सोमपायी रूपमें विख्यात इतना है बना,
जो वज्रबाहु है, अरे, ओ मानवो ! वह इन्द्र है ॥ १३ ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

जो सोमयाज्ञिक-पाकयाज्ञिकको सदा साहाय्य दे,
जो मंत्रगायक, कर्मशीलोंको सदा साहाय्य दे,
है प्रिय जिसे स्तुति, सोमरस, वह जो उसे पाकान्न दे,
है प्रिय ऋचाका गान जिसको मानवो ! वह इन्द्र है ॥१४॥

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चि-
द्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वाह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ ॥

जो सोमयाज्ञिकके लिये अतिशय उदार, सुनित्य है,
जो पाकयाज्ञिकका सहायक, जो प्रकृतिसे सत्य है—
वह तू, कि तेरी ही कृपाकी आस, जो सब कृत्य हैं—
संतति सहित हम सर्वदा गाते उसे, हे इन्द्र ! हैं ॥१५॥

हमारे आध्यात्मिक विकासकी मर्यादा

(श्रीअरविंद के कुछ एक पत्र)

आत्मा, अंतरात्मा और पुनर्जन्म

विकसनशील अंतरात्मा (चैत्यपुरुष) और शुद्ध आत्मा का भेद साफ साफ समझ लेना आवश्यक है। शुद्ध आत्मा अजन्मा है, जन्ममरण में से नहीं गुजरती, जन्म वा देह मन या प्राण या इस व्यक्त विश्वप्रकृति से स्वतंत्र है। यद्यपि यह इन चीजों को ग्रहण और धारण करती है तथापि यह इनसे बद्ध, सीमित और प्रभावित नहीं होती। इसके विपरीत अंतरात्मा एक ऐसी चीज है जो जन्मके अंदर उतरती और मृत्यु में से गुजरती है– चाहे यह स्वयं मरती नहीं, क्योंकि यह अमर है– और इस प्रकार यह एक अवस्था से दूसरी में, पृथ्वीलोक से दूसरे लोकों में जाती है और फिर वापिस पृथ्वीजीवन में आती है। इन गति से यह एक प्रकारके क्रमविकास द्वारा एक जीवन से दूसरे जीवन में यात्रा करती रहती है। वह क्रमविकास इसे मानव अवस्था तक पहुंचाता है और इस सब प्रक्रिया में से इसकी एक विशेष सत्ता को विकसित करता है जिसे हम चैत्य पुरुष कहते हैं। यह चैत्य पुरुष विकास को धारण करता तथा अपने जगत्- अनुभव के और प्रच्छन्न, अपूर्ण पर वर्द्धमान आत्मअभिव्यक्ति के कारणों के रूप में शारीरिक, प्राणिक, मानसिक मानवीय चेतना का विकास करता है। यह सब एक पर्दे के पीछेसे ही करता है और करणात्मक सत्ता की अपूर्णता इसे जहां तक अनुमति देती है वहां तक ही यह अपने दिव्य स्वरूप के यत्किंचित अंशको प्रकट करता है। परंतु एक समय आता है जब कि यह पर्दे के पीछे से बहार निकल आने की तैयारी करने, नेतृत्व ग्रहण करने और संपूर्ण करणात्मक प्रकृति को दिव्य चरितार्थता की ओर फेर देने में समर्थ होता है। यह सच्चे आध्यात्मिक जीवनका आरंभ होता है। अंतरात्मा अब व्यक्त चेतना के उच्चतर विकास के लिये मनोमय मानवीय चेतनासे अधिक ऊंची चेतना के विकास के लिये अपने को तैयार करने में समर्थ होती है–यह मानसिक चेतना से आध्यात्मिक में प्रवेश कर सकती है और आध्यात्मिक के स्तरों में से अतिमानसिक अवस्था में पहुंच सकती है। तब तक कोई कारण नहीं कि क्यों यह जन्म लेना बंद कर दे, वास्तव में यह ऐसा कर ही नहीं सकती यदि आध्यात्मिक अवस्थामें पहुंच कर यह पार्थिव अभिव्यक्ति से बाहर निकल जाना चाहे तो अवश्य ही यह ऐसा कर सकती है– परंतु एक इससे भी ऊंची अभिव्यक्ति संभव है जो अज्ञान में न होकर ज्ञान में हो।

इसलिये तुम्हारा प्रश्न पैदाही नहीं होता। शुद्ध नग्न आत्मा नहीं बल्कि चैत्य पुरुष ही चैत्य लोक में विश्राम के लिये जाता है और वहां वह तब तक रहता है जब तक उसे दूसरे जीवन के लिये पुनः आह्वान नहीं होता। अतएव ऐसी किसी शक्ति की जरूरत ही नहीं जो इसे नया जन्म ग्रहण करनेके लिये बाध्य करे। यह अपने स्वभावसे ही एक ऐसी चीज है जो विकास को धारण करनेके लिये भगवान् से प्रकट की गई है और इसे ऐसा तबतक करना ही होगा जबतक इसके विकास में भगवान का प्रयोजन सिद्ध न हो जाय। कर्म तो मशीन मात्र है, वह पार्थिव जीवनका मूल कारण नहीं– यह हो भी नहीं सकता, क्योंकि अंतरात्मा जब इस सत्ता में पहले पहल प्रविष्ट हुई तब इसका कोई कर्म था ही नहीं।

और फिर "सर्व-आवरक माया" से या "समस्त चेतना को खो देने" से तुम्हारा क्या आशय है? अंतरात्मा संपूर्ण चेतनाको खो नहीं सकती, क्यों कि चेतना तो इसका साक्षात् स्वभाव ही है, पर वह मानसिक प्रकार की चेतना नहीं जिसे कि हम इस नाम से पुकारते हैं। चेतना जड़ प्रकृति की तथाकथित निश्चेतना और फिर मन-प्राण-शरीरके अर्ध-चेतना अज्ञान से केवल आच्छादित ही होती है, लुप्त या नष्ट नहीं होती। जैसे जैसे व्यक्तिगत मन, प्राण और शरीर विकसित होते हैं वैसे वैसे यह उस चेतना को यावत् संभव प्रकट करती है जिसे कि यह बीज रूप में धारण किये है, यह उसे बाह्यकरणात्मक प्रकृति में भी वहांतक तथा उस प्रकार से व्यक्त करती है जहां तक तथा जिस प्रकार से इन कारणों द्वारा और बाह्य व्यक्तित्व द्वारा संभव है। जो व्यक्तित्व इसके लिये तथा इसके द्वारा-क्यों कि ये दोनों ही बातें ठीक हैं— वर्तमान जीवन के लिये तैयार किया गया है।

मुझे इस विषयमें कुछ मालूम नहीं कि पुनर्जन्म की प्रक्रियामें आत्मा को किसी प्रकार का दारुण दुःख भोगना पड़ता है; प्रचलित विश्वास एवं धारणाएं, चाहे जब उनकी कुछ आधार

होता भी है तब भी, कदाचित् ही ज्ञानयुक्त और ठीक होती है।

जन्म-जन्मांतर और आध्यात्मिक अनुभव

संसारमें प्रत्येक मनुष्य अपने निजी भाग्य की दिशा का अनुसरण* करता है; यह दिशा उसकी अपनी प्रकृति तथा कर्मों से निर्धारित होती है। किसी विशेष जीवन में जो कुछ घटित होता है उसे जब तक अनेक जन्मों के संपूर्ण क्रम-विकास के प्रकाश में न देखा जाय तब तक उसका आशय और प्रयोजन समझमें नहीं आ सकता। परंतु जो लोग साधारण मन और भावों से ऊपर उठकर वस्तुओं को समग्र रूप में देखने में समर्थ होते हैं वे यह जान सकते हैं कि भूल चूक, दुर्भाग्य और संकट भी यात्रा के सोपान है, अंतरात्मा जब इनमें से गुजरकर इन्हें पार करती है तो वह अनुभव संग्रह करती जाती है जिससे कि अंतमें वह उस परकी अवस्था में पहुंचने के लिये परिपक्व हो जाती है जो इसे इन चीजों से पार कराके उच्चतर चेतना तथा उच्चतर जीवनमें ले जायगी। जब मनुष्य इस पार करानेवाली सीमारेखा पर पहुंचता है तो, उसे पुराना मन और भाव भावनायें अपने पीछे छोड देनी होती हैं। तब वह साधारण जगत् के सुखःदुःख में फसे हुए लोगों को सहानुभूति की दृष्टिसे और यथा संभव आध्यात्मिक अनुग्रह के भाव से देखता है किंतु पहले की तरह आसक्तिपूर्वक नहीं। वह जान जाता है कि विश्व-शक्ति उन्हें उनके सभी स्खलनों के बीच में भी मार्ग दिखा रही है और वह उनकी सत्ता के देखभाल तथा धारण-पोषण करनेवाली उसी शक्ति पर भरोसा रखता है और मानता है कि वह उनका परम मंगल साधन करेगी। परंतु हमारे लिये जो एक मात्र चीज असल में आवश्यक है वह यह है कि हम महत्तर प्रकाश तथा भागवत एकत्व में प्रवेश करें-केवल भगवान् की ओर मुडें, अपने लिये और क्या दूसरों के लिये केवल उन्हीं पर भरोसा रखें।

मृत्यु के प्रति हमारा क्या भाव होना चाहिये ?

तुम्हारी पत्नी की दुःखद मृत्यु से तुम्हें जो आघात पहुंचा है उसका मैं अनुमान कर सकता हूं। परंतु तुम अब सत्यके अन्वेषक और साधक हो और तुम्हें मनुष्य की साधारण प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठकर वस्तुओं को अधिक व्यापक एवं अधिक महान् ज्योति में देखने का यत्न करना होगा। यों समझो कि तुम्हारी वियुक्त पत्नी एक आत्मा थी जो अज्ञानगत जीवन के उतार-चढाव के द्वारा विकसित हो रही थी- जैसे कि यहां और सब भी विकसित हो रहे हैं, उस विकास में ऐसी घटनाएं भी घटित होती हैं जो मानव मन को दुर्भाग्यपूर्ण प्रतीत होती हैं और एकाएकी आकस्मिक या अस्वाभाविक मृत्यु जो पार्थिव जीवन के इस सदा अस्थिर इन्द्रजाल को-हमारे इस तथोक्त जीवन को-अकाल में ही समाप्त कर देती है, इसे विशेष कर दुःखदायी एवं दुर्भाग्यपूर्ण मालूम होती है। परंतु जो मनुष्य बाह्य दृश्य-प्रपंच के मूल में प्रवेश करता है उसे यह पता लग जाता है कि आत्मा की प्रगति में जो कुछ भी घटित होता है उस सब का हमारे अनुभवों की शृंखला में अपना आशय, अपनी आवश्यकता और अपना स्थान होता है। ये अनुभव उसे एक ऐसे संधिस्थल की ओर से चल रहे हैं जहां वह अज्ञान को पारकर प्रकाश में पदार्पण कर सकता है। वह जानता है कि ईश्वरीय विधान में जो कुछ भी घटित होता है वह भले के लिये ही होता है, चाहे वह मन को इससे उलटा ही क्यों न मालूम हो। तुम अपनी पत्नीको एक ऐसी आत्मा समझो जो जीवन की दो अवस्थाओं के बीच की बाधा को पार कर गई है। उसकी अपने विश्राम लोक की ओर यात्रा में उसे सहायता पहुंचाओ-शांत भाव से मनन करो और भागवत सहायताका आवाहन करो कि वह इस यात्रामें उसे सहारा दे। यदि लगातार बहुत समय तक शोक किया जाय तो वह दिवंगत आत्मा की यात्रामें सहायता करने के बजाय उसमें विघ्न ही डालता है। अपनी क्षति की चिंता मत करो, बल्कि केवल उसके आध्यात्मिक कल्याण की बात सोचो।

जो कुछ हो चुका है उसे अब शांत भावसे विधि के विधानके रूपमें माथे चढाना चाहिये और इसे एक जीवन से दूसरे जीवन में उसकी आत्माके विकास के लिये सर्वोत्तम समझना चाहिये, भले ही यह मानवी दृष्टिसे सर्वोत्तम न भी हो, क्यों कि वह दृष्टि केवल वर्तमान को तथा बाह्य रूपको ही देखती है। आत्म-जिज्ञासुके लिये मृत्यु जीवन के एकरूप से दूसरे में प्रवेशमात्र है, और वास्तव में कोई भी मरता नहीं बल्कि केवल प्रस्थान करता है। इसे इस रूपमें देखो और क्योंकि प्राणिक शोक उसे उसकी यात्रा में सहायक नहीं हो सकता, अतः इसकी सब प्रतिक्रियाएं अपने से परे फेंककर, दृढता से भगवान के पथ का अनुसरण करो।

परीक्षा विभाग—

आवश्यक सूचनायें

आगामी परीक्षायें— संस्कृतभाषा प्रचार समिति पारडीकी आगामी परीक्षायें ता. ३१ जनवरी तथा १ फरवरी १९५३ ई० शनि-रविको होनी निश्चित हुई हैं।

आवेदनपत्र भरनेकी अन्तिम तिथि—

आवेदनपत्रोंके भरनेकी अन्तिम तिथि १५ दिसंबर १९५२ ई० है। परीक्षार्थियोंको चाहिये कि वे उक्त तिथितक अपने आवेदनपत्र भरकर स्थानीय केन्द्र-व्यवस्थापकको दे दें।

सीधे परीक्षामें सम्मिलित होनेवालोंके लिये आवेदनपत्र भरनेकी अन्तिम तिथि १ दिसंबर १९५२ ई० है।

निश्चित तिथियोंके पश्चात् आये हुए आवेदनपत्र किसी भी स्थितिमें स्वीकार नहीं किये जावेंगे।

विशारद के लिये केन्द्र—

विशारदके लिये वे ही केन्द्र स्वीकृत होंगे जहाँसे कमसेकम पांच परीक्षार्थी- विशारद परीक्षाके सम्मिलित होंगे।

पांचसे कम परीक्षार्थी होनेपर उन्हें समीपके अन्य केन्द्रमें सम्मिलित होना होगा।

शुल्क— शुल्क सुरक्षित करने या छूट रखनेके विषयमें पारडी कार्यालय द्वारा पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लेनी आवश्यक है।

छूट शुल्कके लिये सीधे आवेदनपत्रोंके साथ ही १ दिसंबर १९५२ ई० तक स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

शुल्क सुरक्षित रखनेके लिये परीक्षा तिथिसे १५ दिन पूर्व सूचना (आवश्यक प्रमाणपत्रोंके साथ) आजानी चाहिये।

बिना इस प्रकारकी पूर्व सूचनाके शुल्क न छोडा जाएगा और न सुरक्षित ही रखा जावेगा।

केन्द्रोंको पत्र पुष्प —

सितंबर १९५२ ई० की परीक्षाओंके निमित्त केन्द्रोंके कार्यको गति एवं प्रोत्साहन प्राप्त होनेके उद्देश्यसे सं० भा० प्र० समिति स्वाध्याय मण्डल पारडी—कार्यालय द्वारा पत्र पुष्प रूपमें जो आर्थिक सहायता निश्चित की गई है वह नवंबरके मध्यतक केन्द्रोंको पहुँचा दी जावेगी।

किन्तु इस सहायताका आधा अंश स्वाध्यायमण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंके रूपमें दिया आएगा साथ ही २५ प्रतिशत कमिशन भी (अर्थात् १०) रु. पुस्तकोंके बदले १२॥) रु. की पुस्तकें दी जावेंगी।

यदि इन पुस्तकोंके स्थानपर पाठ्य पुस्तकें मंगाई जावेंगी तो कमिशन नहीं मिलेगा।

पुस्तकोंके सूचीपत्र प्रतिमास हमारे मासिक पत्रोंमें प्रकाशित किये जा रहे हैं।

देय सहायताकी रकमका आंकडा पत्रद्वारा प्रत्येक केन्द्रको नवंबरमें ही सूचित किया जाएगा।

साहित्यप्रवीण, साहित्यरत्न एवं साहित्याचार्य परीक्षायें—

उपर्युक्त परीक्षाओंके लिये आवेदनपत्रोंकी मांग मार्च १९५३ ई० से पूर्व न की जावे।

ये परीक्षायें दिसंबर १९५३ के लगभग होंगी। अतः इन परीक्षाओंके विषयमें किसी भी प्रकारका पत्र-व्यवहार कृपया मार्चसे पूर्व न किया जावे।

रात्रीके अन्धकारको दूर करती है। अपनी बहिनके प्रभावको हटाकर अपना प्रभाव वहां जमा देती है। यह (सू-नरी जनी) उत्तम नेतृत्व करती है और उत्तम संतान उत्पन्न करती है। ऐसी यह स्वर्गीय कन्या आती है ऐसा दीख रहा है।

यहां उषाको प्रौढ स्त्रीके रूपमे वर्णन किया जा रहा है। (सू-नरी) घरका उत्तम नेतृत्व करती है, सब पर उत्तम प्रशासन करती है और (जनी) उत्तम संतान उत्पन्न करती है। इतनी यह प्रौढ स्त्री है।

१०४ यह उषा (अरुषी) तेजस्विनी है, यह प्रकाशती है (गवां माता) गौओंका हित करती है, माताके समान गौओंका पालन करती है (अश्वा इव चित्रा) घोडियोंके समान चित्र विचित्र रूपसे सुंदर दीखनेवाली (ऋतावरी) यज्ञको सिद्ध करनेवाली, सत्यका पालन करनेवाली, यह उषा अश्विदेवोंकी मित्रता करनेवाली है। अश्वि देवोंका उदय प्रातःकालमें होता है, उसी समय यह उषा उदयको प्राप्त होती है। इसलिये इसको अश्विदेवोंके साथ मित्रता करनेवाली कहा है।

१०५ हे उषा ! तू अश्विदेवोंकी सखी है, गौओंकी माता है और धनकी स्वामिनी है।

१०६ हे मधुरभाषण करनेवाली उषा ! तू अपने मधुर भाषणसे शत्रुओंको दूर कर, ज्ञानवान होकर सदा जागती रह।

१०७ कल्याणकारी किरण गौवें खुली होनेके समान दीख रहे हैं। तू इन किरणोंसे तेजको सर्वत्र भर दे।

१०८ हे उषा ! तूं सर्वत्र तेजको भर दे। प्रकाशसे अन्धकारको दूर कर और अपनी धारक शक्तिका संरक्षण कर और बढा।

१०९ हे उषा ! तूं किरणोंसे आकाशको भरपूर भर देती है। तेजस्वी प्रकाशसे विस्तीर्ण अन्तरिक्षको भी भर देती है। सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश कर रही है।

इस तरह यह वामदेव ऋषिका उषादर्शन यहां समाप्त होता है।

अत्रिपुत्र सत्यश्रवा ऋषिका उषा वर्णन

(ऋ० ५।७९।१-१०)

(सत्यश्रवा आत्रेय । उषाः । पङ्क्तिः ।)

११० महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥
१११ या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥

११० हे (उषः) उषा ! (दिवित्मती) दीप्तियुक्त तू (नः महे राये) हमें बडे धन प्राप्त करनेके लिये (अद्य बोधय) आज जाग्रत कर। (यथा चित् नः अबोधयः) जैसा तूने हमें पहिले जगाया था। हे (सुजाते) उत्तम रीतिसे उत्पन्न (अश्वसूनृते) घोडोंके लिये जिसकी प्रार्थना की जाती है वह उषा ! तू (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्य पुत्र सत्यकीर्तिवाले पर अनुग्रह कर ॥ (१)

१११ हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री ! (या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छः) तूने उत्तम नेता शुद्ध रथीके लिये पूर्व समयमें प्रकाश किया था (सा) वह तू उषा जो कुलीन और घोडोंके लिये प्रशसित होती है वह (सहीयसि) बलवान् वय्य पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥ (२)

११२ सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

११३ अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४ ॥

११४ यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥

११५ ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥

११६ तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥

११७ उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥

---

११२ हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये ! (आभरद्वसुः) धन लाकर देनेवाली (सा अद्य नः व्युच्छ) वह आज तू हमारे लिये अन्धकारको दूर कर। हे (सुजाते अश्वसूनृते) उत्तम कुलमें उत्पन्न और घोडोंके संबधमें प्रशंसित होनेवाली (यो) उषा (सहीयसि०) सत्य बलवाले वाय्यपुत्र सत्य कीर्तिवाले पर (व्यौच्छः) प्रकाशित हो ॥

११३ हे (विभावरि) प्रकाशनेवाली उषा ! (ये वह्नयः त्वा) जो तेजस्वी स्तोतागण (त्वा स्तोमैः गृणन्ति) तेरी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, हे (मघोनि) भाग्यवाली (सुजाते अश्वसूनृते) उत्तम कुलीन और घोडोंके विषयमें अच्छा बोलनेवाली उषा ! वे स्तोतागण (मघैः सुश्रियः) धनोंसे उत्तम धनवान् (दामन्वंतः सुरातयः) और दानके लिये प्रशंसित अतएव उत्तम धन देनेवाले होते हैं ॥ (४)

११४ हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होनेवाली उषा ! (यत् चित् हि इमे गणाः) जो भी कोई ये स्तोतागण (मघत्तये ते छदयन्ति) धन प्राप्तिके लिये तेरी स्तुति करते हैं, वे (चित् वष्टयः परि दधुः) निःसंदेह ऐश्वर्य धारण करते हैं और वे (अ-ह्रयं रायः ददतः) अविनाशी धन देते हैं ॥ (५)

११५ हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन घोडोंके लिये प्रशंसित और (मघोनि उषः) धनवाली उषा ! (एषु सूरिषु वीरवत् यशः) इन विद्वानोंमें वीर पुत्रोंसे युक्त धन (आधाः) दे। (ये मघवानः) जो धनी (अ-ह्रया राधांसि) क्षीण न होनेवाले धन (नः अरासत) हमें देते हैं ॥ (६)

११६ हे (मघोनि सुजाते अश्वसूनृते उषः) धनवाली कुलीन और घोडोंके लिये प्रसिद्ध उषा ! (तेभ्यः द्युम्नं बृहत्-यशः) उनके लिये बडा यशस्वी धन (आ वह) तू दे (ये सूरयः) जो विद्वान् (गव्या अश्व्या राधांसि) गौवें घोडे आदि धन (नः भजन्त) हमें देते हैं ॥ ७ ॥

११७ हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होनेवाली उषा ! हे (दिवः दुहिताः) हे स्वर्ग कन्ये ! (नः गोमतीः इषः आवह) हमारे लिये गौओंसे युक्त धन ले आ। (उत) और (सूर्यस्य शुक्रैः शोचद्भिः अर्चिभिः रश्मिभिः साकं) सूर्यके स्वच्छ, पवित्रता करनेवाले दीप्तिमान किरणोंके साथ इधर आओ ॥ (८)

११८ व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९ ॥

११९ एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥

(ऋ० ५।८०।१-६)

(सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः । त्रिष्टुप् ।)

१२० द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

१२१ एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥

१२२ एषा गोभिररुणेभिर्युजानाऽस्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥

१२३ एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥

---

११८ हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषा ! (व्युच्छ) प्रकाशित हो । (अपः चिरं मा तनुथाः) हमारे कर्ममें आनेके लिये देरी न कर । हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन और घोडोंके लिये प्रसिद्ध उषा ! (यथा रिपुं स्तेन तपाति) जैसा राजा चोर तथा शत्रुको ताप देता है, वैसा (सूरः अर्चिषा त्वा न इत) सूर्य अपने तेजसे तुम्हें कष्ट न दे ॥ (९)

११९ हे (विभावरि सुजाते) तेजस्विनी कुलीन (अश्वसूनृते) घोडोंके लिये प्रसिद्ध (उषः) उषा ! (त्वं) तू (एतावत् वा इत्) इतना और (भूयः वा) अधिक भी धन (दातुं अर्हसि) दान देनेके लिये योग्य है, समर्थ है (या स्तोतृभ्यः उच्छन्ती) जो स्तोताओंके लिये अन्धकार दूर करती हुई (न प्रमीयसे) उनका नाश नही करती है ॥(१०)

१२० (द्युतद्-यामानं बृहतीं) तेजस्वी रथवाली बडी विशाल (ऋतेन ऋतावरीं) सरलताके भावसे आनेवाली (अरुणप्सुं विभातीं) सुंदर रंगवाली चमकती हुई (स्वः आवहन्तीं) सूर्यको लानेवाली (देवीं उषसं) उषा देवीकी (विप्रासः मतिभिः प्रतिजरन्ते) ज्ञानी लोग अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह स्तुति करते हैं ॥ (१)

१२१ (दर्शता एषा) यह दर्शनीय उषा (जनं बोधयन्ती) लोगोंको जगाती है, (पथः सुगान् कृण्वती) मार्गोंको सुगम बनाती है, और (अग्रे याति) आगे बढती है । यह (उषा) उषा (बृहद्रथा बृहती) बडे रथमें बैठनेवाली बडी (विश्वं-इन्वा) सबमें व्यापनेवाली (अह्नां अग्रे ज्योतिः यच्छति) दिनोंके प्रारंभमें प्रकाशकी ज्योति देती है ॥ (२)

१२२ (एषा) यह उषा (अरुणेभिः गोभिः युजाना.) लाल रंगवाले बैलोंको जोतनेवाली (अस्रेधन्ती रयिं अप्रायु चक्रे) क्षीण न होनेवाली धनको स्थिर करती है । (सुविताय पथ. रदन्ती) उत्तम गमन करनेके लिये मार्गोंपर प्रकाश करती है, यह (पुरुष्टुता विश्ववारा) बहुतों द्वारा प्रशंसित और सबको स्वीकारने योग्य (विभाति) उषा विशेष चमकती है ॥ (३)

१२३ (एषा व्येनी भवति) यह निष्पाप होती है । यह (द्विबर्हा) दोनों ओर बाल रखनेवाली (पुरस्तात् तन्वं आविष्कृण्वाना) पूर्व दिशामें अपने शरीरको प्रकट करती है, (ऋतस्य पन्थां साधु अन्वेति) सत्यके मार्गको ठीक तरह अनुसरती है, (प्रजानती इव दिशः न मिनाति) ज्ञानवती स्त्रीके समान दिशाओंमें भूल नहीं करती ॥ (४)

१२४ एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥
१२५ एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन् योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ ॥

---

१२४ (एषा शुभ्रा न) यह गौरवर्ण स्त्रीके समान (तन्वः विदाना) अपने शरीरावयवोंको बताती हुई (स्नाती ऊर्ध्वा इव) स्नान करके ऊपर आयी हुई स्त्रीके समान (नः दृशये अस्थात्) हम सबके सामने दिखानेके लिये ऊपर उठी है । (द्वेषः तमांसि अपबाधमाना) द्वेष करने योग्य अन्धकारको दूर हटाती हुई (दिवः दुहिता उषाः) द्युलोककी पुत्री उषा (ज्योतिषा आगात्) प्रकाशके साथ आ गयी है ॥ (५)

१२५ (एषा प्रतीची दिवः दुहिता) यह सामने आयी स्वर्ग कन्या उषा (नॄन् भद्रा योषा इव) पुरुषोंके सामने कल्याणकारिणी स्त्रीके समान (अप्सः नि रिणीते) अपने रूपोंको प्रकट करती है । (दाशुषे वार्याणि व्युर्ण्वती) दाताको उत्तम धन देती है । यह (युवतिः ज्योतिः पूर्वथा अकः) तरुणी स्त्री अपना प्रकाश पूर्व कालके समान करती है ॥ (६)

सत्यश्रवा ऋषिका उषा वर्णन

अत्रिगोत्री सत्यश्रवा ऋषिने जो उषाका वर्णन किया वह यह है—

११० हे उषः ! दिवित्मती महे राये नः अद्य बोधय, यथा नः अबोधयः— हे उषा ! तू तेजस्वी होकर बडा ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये हमें आज जगाओ, जैसा तूने हमें पूर्व कालमें जगाया था ।

हे सुजाते अश्वसूनृते— हे उत्तम कुलमें उत्पन्न और अश्वोंके विषयमें उत्तम गुणवर्णन परक भाषण करनेवाली उषा ! **(वाय्ये सत्यश्रवसि)** वाय्य सत्यश्रवापर कृपा कर, सत्यश्रवाका हित करनेका कार्य कर । इस सूक्तका द्रष्टा ऋषि सत्यश्रवा है । '**सत्यश्रवाः**' का अर्थ 'जिसने श्रवण मनन सत्य सनातन पद्धतिसे किया है' । '**आत्रेयः सत्यश्रवाः**' इस सूक्तका ऋषि है । इस सूक्तके मंत्रोंमें जो कहा है वह '**वाय्य सत्यश्रवाः**' है । अर्थात् अत्रिकुलोत्पन्न सत्यश्रवा उषाकी प्रार्थना करता है कि हे उषा ! तू वाय्य सत्यश्रवापर कृपा कर और उसका अभ्युदय निःश्रेयस् करनेमें सहायक हो ।

इस सूक्तके १-३ मंत्रोंके अन्तमें '**सत्यश्रवसि वाय्ये, सुजाते अश्वसूनृते**' (ऋ ५।७९।१-३) यह मंत्रभाग समान रीतिसे आया है । और '**सुजाते अश्वसूनृते**' इतना भाग तो इस सूक्तके दसों मंत्रोंमें अन्तमें है ।

'**सु-जाते**'— उत्तम रीतिसे उत्पन्न होनेवाली, उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेवाली, उत्तम रीतिसे प्रकट होनेवाली उषा ।

'**अश्व-सूनृते**'—घोडोंके लिये जिसकी स्तुति की जाती है, घोडोंके विषयमें जो अच्छा भाषण करती है । घोडोंके कारण जो प्रसिद्ध है ।

ये दोनों पद इस सूक्तके प्रत्येक मंत्रमें हैं ।

१११ हे दिवः दुहितः ! या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छ — हे स्वर्गकन्ये उषा ! जो तू उत्तम नेता शौचद्रथीके लिये पूर्व समयमें प्रकाशित हो चुकी थी । '**सु-नीथः शौचद्रथः**'— उत्तम नायक, उत्तम नीतिके साथ चलनेवाला, उत्तम संचालन करनेवाला तेजस्वी रथी वीर । ऐसे वीरोंके लिये उषाने प्रकाश किया था । वह उषा अब '**सहीयसि वाय्ये सत्यश्रवसि**'— बलवान सत्य पराक्रमी वाय्य सत्यश्रवापर (व्युच्छ) प्रकाशती रहे ।

११२ हे स्वर्गकन्ये उषा ! (आ-भरद्-वसुः) धन लानेवाली (अद्य नः व्युच्छ) आज हमारे लिये प्रकाश दे । तथा हे उत्तम कुलमें उत्पन्न और हे अश्वोंके लिये प्रशंसित उषा ! तू बलवान् वाय्य सत्यश्रवाके लिये प्रकाशित होती रह ।

११३ हे प्रकाशनेवाली उषा ! जो स्तोता तुम्हारी प्रशंसा गाते हैं, तथा हे भाग्यवाली, उत्तम जन्मी और घोडोंके लिये

प्रशंसित उषा ! वे स्तोतागण धनोंसे (मघैः सुश्रियः) धनवान होते हैं और वे दान देते हैं और दानके लिये अत्यंत प्रशंसित होते हैं ।

११४ हे उत्तम कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित उषा ! जो लोग धन प्राप्तिके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं, वे धनी होते और कभी विनष्ट न होनेवाला दान देते हैं। (अन्ह्यं रायः ददत) दान ऐसा देते हैं कि वह सतत लाभ देता रहे। ऐसा दान देना चाहिये, यह बोध यहां मिलता है।

११५ हे उषा ! एषु सूरिषु वीरवत् यशः आधाः- हे उषा ! तू इन ज्ञानियोंको वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला यश और धन दे दो। धन चाहिये और उसके साथ वीरपुत्र भी चाहिये। अपने पुत्र ऐसे हों कि जो अपने धनका संरक्षण कर सकें। (**ये मघवानः अह्रयं राधांसि नः अरासत**)- जो धनी अक्षय धनका दान हमें देते हैं।

११६ ये सूरयः गव्या अश्व्या राधांसि नः भजन्त, तेभ्यः द्युम्नं बृहत् यशः आ वह— जो ज्ञानी गौओं घोडोंसे युक्त धन हमें देते हैं, उनको बडा तेजस्वी और यशस्वी धन दे दो।

११७ हमें गौओंके साथ धन तथा अन्न देदो और सूर्यके प्रकाशके साथ हमें प्रकाश भी दे दो।

११८ हे स्वर्गकन्ये ! हमारे यज्ञ कर्ममें प्रकाशित हो और यहां आनेमें देरी न कर। जिस तरह (यथा रिपुं स्तेनं तपाति) जैसा राजा चोर डाकूको कष्ट देता है वैसा कष्ट तुम्हें न हों। जो शत्रु और चोर होगा उसको कष्ट देना योग्य है। जिससे उसका आचरण सुधरेगा और वह सज्जन बनेगा ऐसा राजप्रबंध द्वारा प्रयत्न करना योग्य है।

११९ हे उषा ! तू इतना और इससे अधिक धन दे सकती है, स्तोताओंको प्रकाश देती है और उनका नाश कभी नहीं करती।

इस सूक्तमें शब्दालंकार बहुत वार आया है। जो प्रत्येक मंत्रके अन्तिम पादमें दिखता है। वे ही पद पुनरुक्त होनेसे शब्दालंकार होता है। अब इसी आत्रेय सत्यश्रवाका दूसरा सूक्त देखिये—

१२० बडे सुन्दर तेजस्वी रथमें बैठकर उत्तम प्रकाशका फैलाव करती हुई उषा आती है जिसकी स्तुति ज्ञानी करते हैं।

१२१ दर्शता एषा जनं बोधयन्ती— दर्शनीय यह उषा आकर लोगोंको जगाती है।

पथः सुगान् कृण्वती अग्रे याति- मार्गोंको चलनेके लिये सुगम करती है और आगे बढती है। प्रकाशके कारण चलना फिरना सहज और विना कष्टके होता है।

बृहद्रथा बृहती विश्वं-इन्वा अह्नां अग्रे ज्योतिः यच्छति— विशाल रथमें बैठनेवाली यह बडी उषा विश्वमें प्रकाशसे व्यापती हुई दिनोंके प्रारंभमें प्रकाश देती है।

१२२ यह उषा लाल किरणोंसे प्रकाशती है, क्षीण नहीं होती, परंतु बढती जाती है धनको स्थायी रहनेवाला करती है। मार्गपर प्रकाश करती है और विशेष प्रकाशती है।

१२३ एषा श्येनी भवति— यह उषा निष्पाप होती है; इस तरह स्त्रियोंको निष्कलंक होना चाहिये।

पुरस्तात् तन्वं आविष्कृण्वाना— पूर्व दिशामें अपने शरीरको प्रकट करती है। सामने अपने शरीरावयवोंको दिखाती है। सहजहीसे तरुण स्त्रिया इस तरह चलती हैं और न जानती हुई ऐसे आविर्भाव करती है। अवयव ढाक देनेके यत्नसे अपने अवयवोंको प्रकट करती है।

ऋतस्य पन्थां साधु अन्वेति— सत्यमार्गसे अच्छी तरह चलती है। इस मंत्रभागके साथ मिलता जुलता अर्थ पूर्व मंत्रभागका करना चाहिये। इसलिये हमने पूर्व मंत्रभागके अर्थमें लिखा है कि सहजहीसे उसके शरीरावयव प्रकट हो जाते हैं। इसमे दोषकी संभावना नहीं है।

१२४ एषा शुभ्रा न तन्वः विदाना स्नाती ऊर्ध्वा इव नः दृशये अस्थात्— यह गौर वर्ण स्त्रीके समान अपने शरीरको सहजहीसे दिखाती हुई स्नान करके ऊपर आयी तरुणीके समान हमारे सम्मुख आगयी है। उषाका उदय हुआ है।

द्वेषः तमांसि अपबाधमाना दिवः दुहिता उषाः ज्योतिषा आगात्— द्वेष करने योग्य अन्धकारको दूर करती हुई यह उषा प्रकाशके साथ आगयी है। प्रकाश रही है।

१२५ यह कल्याण करनेवाली उषा स्वर्गकन्या कल्याण करनेवाली स्त्रीके समान पुरुषोंके सामने अपने विविधरूपोंको प्रकट करती है। दाताको उत्तर धन देती है और प्रकाशसे जगत्को भर देती है।

बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषिका
उषा वर्णन

(ऋ. ६।६४।१-६)
(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । उषाः । त्रिष्टुप्)

१२६ उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ १ ॥

१२७ भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत् ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ १ ॥

१२८ वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

१२९ सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरासि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

१३० सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

---

१२६ (रोचमाना. रुशन्तः उषस) तेजस्वी चमकनेवाली उषाएं (श्रियै) विश्वकी शोभा बढानेके लिये (अपां ऊर्मयः न) पानीकी लहरियोंके समान (उद् अस्थुः) ऊपर आरही हैं । (विश्वा सुपथा सुगानि कृणोति) यह सब मार्ग सुगम करती है । यह (मघोनी वस्वी दक्षिणा अभूत् उ) धनवाली उषा धन देनेवाली और अपने कर्ममें दक्ष रहती है ॥ (१)

१२७ हे उषा ! तू (भद्रा ददृक्षे) कल्याणरूप दीखती है । (उर्विया विभासि) तू विस्तीर्ण रूपमें प्रकाशती है ! (ते शोचिः भानवः द्यां उत् अपप्तन्) तुम्हारे पवित्र किरण आकाशमें ऊपर उठे हैं । हे (उषः देवि) उषा देवि ? (महोभिः रोचमाना) किरणोंसे चमकनेवाली और (शुम्भमाना) शोभनेवाली तू (वक्षः आविः कृणुषे) अपनी छाती खुली करती है ॥ (२)

१२८ (अरुणासः रुशन्तः गावः) लाल रंगवाली तेजस्वी किरणें (सुभगां उर्विया प्रथानां सीं) उत्तम भाग्यवती विस्तीर्ण प्रशंसनीय ऐसी इस उषाको (वहन्ती) उठाती हैं । (अस्ता शूर इव) अचूक बाण मारनेवाले शूर पुरुषके समान यह उषा (शत्रून् अप ईजते) शत्रुओंको दूर करती है । (अजिरः वोळ्हा न) शीघ्रगामी घुडसवारके शत्रु दूर करनेके समान यह उषा (तमः बाधते) अन्धकारको दूर भगाती है ॥ (३)

१२९ हे उषा ! (पर्वतेषु उत अवाते) पर्वतोंमें और मार्ग रहित प्रदेशमें (ते सुपथा सुगा) तेरे लिये उत्तम मार्ग सुगम होते हैं । हे (स्वभानो) स्वयं प्रकाशी उषा ! तू (अपः तरसि) अन्तरिक्षमें संचार करती है । हे (पृथुयामन् ऋष्वे) बडे रथमें बैठनेवाली सुंदर (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषा ! (सा नः) वह तू हमारे लिये (इषयध्यै) प्राप्तव्य धन (आ वह) ले आ ॥ (४)

१३० हे (उषः) उषा ! (सा वरं आ वह) वह तू श्रेष्ठ धन मेरे पास ले आ । (या अवाता जोषं अनु) जो तू अप्रतिहत गतिवाली अपनी इच्छानुसार (उक्षभिः वरं वहसि) बैलोंके द्वारा श्रेष्ठ धन लाती है । हे (दिवः दुहितः) स्वर्ग-कन्या उषा ! (या त्वं देवी) जो तू देवी (पूर्वहुतौ मंहना दर्शता भूः) प्रथम हवनके समय पूजनीय और दर्शनीय होती है ॥ (५)

१३१ उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६ ॥

(ऋ० ६।६५।१-६)

(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । उषाः । गायत्री)

१३२ एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

१३३ वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ २ ॥

१३४ श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

१३५ इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥ ४ ॥

१३६ इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

---

१३१ हे उषा ! (ते व्युष्टौ) तेरे प्रकाशित होनेपर (ये पितुभाजः नरः) जो अन्न सेवन करनेवाले मनुष्य हैं, तथा (वयः चित्) पक्षी भी (वसतेः अपप्तन्) अपने रहनेके स्थानसे बाहर पडते हैं । हे (उषः देवि) उषा देवि ! तू (अमा सते दाशुषे मर्त्याय) साथ रहनेवाले दाता मनुष्यके लिये (भूरि वामं वहसि) बहुत धन देती है ॥ (६)

१३२ (एषा स्या दिवोजाः दुहिता) यह वह स्वर्गमें जन्मी कन्या उषा (नः उच्छन्ती.) हमारे लिये अन्धकार दूर करती हुई (मानुषी क्षितीः अजीगः) मानुषी प्रजाओंको जगाती है । (या रुशता भानुना) जो तेजस्वी प्रकाशसे युक्त होकर (राम्यासु अक्तून्) रात्रीओंके अन्दरके प्रकाशको (तमसः चित् तिरः अज्ञायि) तथा अन्धकारको दूर करती है ऐसा दीखता है ॥ (१)

१३३ (चन्द्ररथाः) चन्द्रके समान शोभावाले रथमें बैठनेवाली और (तत् बृहतः यज्ञस्य अग्रं नयन्तीः) उस विशाल यज्ञके समीप तक पहुंचानेवाली (उषसः) उषाएं (अरुणयुग्भिः अश्वैः) अरुण रंगवाले घोडोंसे (वि ययुः) विशेष वेगसे जा रही हैं । वे (चित्रं भान्ति) विलक्षण तेजसे प्रकाशित हो रही हैं । (ता. ऊर्म्यायाः तमः वि बाधन्ते) वे रात्रीके अन्धकारको दूर करती हैं ॥ (२)

१३४ हे (उषसः) उषाओ ! (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (श्रवः वाजं इषं ऊर्जं) कीर्ति बल अन्न और रस (वहन्तीः) ले जानेवाली तुम (मघोनीः पत्यमानाः) धनवाली तथा जानेवाली उषाएं (विधते) सेवा करनेवाले मेरे लिये (वीरवत् रत्नं अव.) वीर पुत्रोंसे युक्त रत्न और अन्न (अद्य नि धात) आज ही दे दो ॥ (३)

१३५ हे (उषासः) उषाओ ! (इदा हि वः विधते) इस समय तुम्हारी सेवा करनेवालेको देनेके लिये तुम्हारे पास (रत्नं अस्ति) रत्न है । (इदा वीराय दाशुषे) इस समय वीरको देनेके लिये तुम्हारे पास धन है । (इदा जरते विप्राय) इस समय स्तुति करनेवाले ज्ञानीको देनेके लिये तुम्हारे पास धन है । (यत् उक्था) जो स्तोत्र हैं उनको गानेवाले (मावते पुराचित्) मुझ जैसेके लिये, जैसे पूर्व समयमें दिये थे वैसे ही इस समय भी धन (नि वहथ स्म) दे दो ॥ (४)

१३६ हे (अद्रिसानो उषः) पर्वतके शिखरपर दीखनेवाली उषा ! (ते इदा हि) तेरी कृपासे इसी समय (अंगिरसः) अंगिरस गोत्री (गवां गोत्रा) गौवोंके झुंडोंको (गृणन्ति) खुला करते हैं । (अर्केण ब्रह्मणा विबिभिदुः) सूर्य किरणोंके साथ गाये स्तोत्रसे अन्धकारोंका नाश हो रहा है । (नृणां देवहूतिः सत्या अभवत्) मनुष्योंकी इच्छा प्रार्थना अब सत्य हो चुकी है ॥ (५)

१३७ उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥

१३७ हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषे ! (प्रत्नवत् नः उच्छ) पूर्व समयके अनुरूप इस समय हमारे लिये अन्धकार दूर कर । हे (मघोनि) धनवती उषा ! (भरद्वाजवत् विधते गृणते) भरद्वाजके समान सेवा करनेवाले और स्तुति करनेवाले मुझे (सुवीरं रयिं रिरीहि) सुपुत्र युक्त धन दे तथा (नः) हमारे लिये (उरुगायं श्रवः अधि धेहि) बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अन्न वा यश दे दो ॥ (६)

भरद्वाज ऋषिका उषा वर्णन

भरद्वाज ऋषि कहते है—

१२६ अपां ऊर्मयः इव रोचमानाः रुशन्तः उषसः श्रियै उदस्थुः- जैसे जलकी लहरियां उछलती हैं उस तरह यह प्रकाशकी लहरियां-उषाएं शोभाके बढानेके लिये नीचेसे ऊपर आरही है ।

विश्वा सुपथा सुगा कृणोति- सब मार्ग सुगम करती है । प्रकाशसे मार्ग सुगम हो जाते है । हमें भी मार्ग सुगम करने चाहिये ।

१२७ हे उषा ! तू कल्याण करनेवाली जैसी दीखती है । तेरे प्रकाश किरण ऊपर आकाशमे फैल रहे है । हे उषा देवि ! तू (**महोभिः रोचमाना शुम्भमाना वक्ष आविः कृणोषि**)- किरणोंसे प्रकाशमान और सुशोभित होकर अपनी छातीको प्रकट करती है । अपने अन्त करणको प्रकट करती है । अपने अवयवोंको प्रकट करती है ।

१२८ प्रकाशमान किरण विशाल उषाको ऊपर लाते हैं । (**अस्ता शूर इव शत्रून् अप ईजते**)— शस्त्र चलानेमें कुशल शूर पुरुषके समान यह उषा शत्रुओंको दूर भगाती है । इससे उपदेश मिलता है कि तरुण स्त्रीको आत्मरक्षणके लिये शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करनेकी विद्या सीखनी चाहिये ।

अजिरः वोळ्हा न तमः बाधते-शीघ्रगामी घुडसवार अपने शत्रुको भगाता है, उस तरह यह उषा अन्धकार दूर करती है ।

१२९ अवाते पर्वतेषु ते सुपथा सुगा— मार्गरहित पर्वतोंमें भी तेरे लिये मार्ग सुगम हो रहे है ।

यह उषा प्रकाशसे अन्तरिक्षमें संचार करती है । बडे रथमें बैठनेवाली यह उषा प्राप्त करने योग्य धनको ले आती है ।

१३० उषा श्रेष्ठ धन लाती है, उसका रथ बैलों द्वारा ढोया जाता है । प्रथम हवन करनेके समय उषाका ही सेवन होता है ।

१३१ हे उषा ! तेरा प्रकाश होनेपर मनुष्य, पशु और पक्षी अपने स्थानसे उठते हैं और अन्न ढूंढनेके लिये लग जाते है । इस समय दाता मनुष्यके लिये उषा उत्तम धन देती है ।

१३२ यह उषा प्रकाशती है और मनुष्योंको जगाती है यह अपने प्रकाशसे रात्रीको और अन्धकारको दूर करती है ।

१३३ ये सुन्दर रथमें बैठनेवाली उषाए, यज्ञको सिद्ध करती है और अपने प्रकाशमे विलक्षण उत्तम तेजको देती हैं और अन्धकारको दूर करती है ।

१३४ हे उषाओ ! तुम दाता मनुष्यके लिये यश अन्न और बल देती है तथा यज्ञ करनेवालेके लिये वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला धन, अन्न और सरक्षण देती है ।

१३५ हे उषाओ ! तुम्हारे पास इस समय रत्न है जो उपासकके लिये तुम दे दो । इस दाता वीरके लिये, ज्ञानी उपासकके लिये तुम उत्तम धन दे दो । ऐसाही तुमने पूर्व समयमें स्तोताओंको दिया था । वैसा इस समय भी दे दो ।

१३६ आंगिरस गोत्री ऋषि पर्वत शिखरपर प्रकाश डालनेवाली उषाके गुणगान कर रहे हैं । गाये गये इन स्तोत्रोंके साथ साथ अन्धेरा दूर हो चुका है । स्तोताओंकी प्रार्थना सत्य हो गयी है ।

१३७ हे उषा ! तू पूर्व समयके समान आज हमारे लिये अन्धेरा दूर कर । भरद्वाजके समान स्तोताके लिये वीर पुत्रोंसे युक्त धन दे । और हमें प्रशंसनीय अन्न धन और बल दे दो ।

***

वसिष्ठ ऋषिका उषा वर्णन

(ऋ० ७।७५) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१३८ व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाऽऽविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमाङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥ १ ॥

१३९ महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥

१३८ यह (उषाः दिविजाः वि आवः) उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे प्रकाशने लगी है। वह उषा (ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना) तेजसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई (आ अगात्) आ रही है। वह (द्रुह अजुष्ट तमः अप आव) शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और (अंगिरस्तमा पथ्याः अजीगः) चलनेके मार्गोंको प्रकाशित करती है। (१)

१३९ (अद्य नः महे सुविताय बोधि) आज हमारे बडे सुखके लिये जागो। हे (उषः) उषा देवी ! हमें (महे सौभगाय प्र यंधि) बडे सौभाग्यका प्रदान कर। तथा (चित्रं यशस रयिं अस्मे धेहि) विशेष श्रेष्ठ यशसे युक्त धन हमें दे। हे (मानुषि देवि) मनुष्योंका हित करनेवाली देवी ! (मर्तेषु श्रवस्युं) मनुष्योंको अन्न तथा यशवाले पुत्रको दो। (२)

१३८ दिविजा ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वानाः आ अगात्– दिव्य भाववाले, सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करते हुए आते हैं। जो सहज स्वभावसे महिमाको प्रकट करते हैं वे दिव्य कहे जाते है। सहज ही से श्रेष्ठोंकी महिमा प्रकट होती है।

द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः— वह (उषा) दुष्ट, चोर आदिको तथा अप्रिय अन्धकारको दूर करती है। अन्धकारके समय चोर, डाकू, दुष्ट आदिका उपद्रव होता है। प्रकाश आते ही वह उपद्रव दूर होता है।

अंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः— अपने प्रकाशसे उषा लोगोंके चलने फिरनेके मार्गोंको प्रकट करती है। उषःकालमें लोग उठते हैं और मार्ग दीखनेके कारण चलने फिरने लगते हैं।

उषा दिव्य स्त्री है। दिव्य गुणोंके साथ वह प्रकट हुई है। वह उषा सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करती है, उस तरह स्त्रियां दिव्य गुण स्वभाववाली हों और उनके सहज स्वभावसे उनकी महिमा प्रकट होती रहे। वे स्त्रियां अपने प्रभावसे द्रोहियों, दुष्टों और अपकारियोंको दूर करें, अज्ञानान्धकारको दूर करें, प्रकाशका मार्ग दिखावें, जिससे लोग जांय और अपने प्राप्तव्य स्थानको प्राप्त करें।

यह मन्त्र मनुष्योंको सर्व साधारणतया उपदेश देता है कि वे मनुष्य दिव्य गुण कर्म स्वभावके द्वारा अपनी महिमाको प्रकट करें, समाजमें कुव्यवहार करनेवाले समाज-द्रोहियोंको दूर करें, समाजसे अज्ञानान्धकारको दूर करें और ज्ञानको चारों ओर फैलावें। सबको ज्ञानवान् बनानेमें अपने कर्तव्यका भाग स्वयं करें और सबको अपना योग्य मार्ग दीखे ऐसा करें। ज्ञानसे परिशुद्ध हुए मार्गसे ही सब मनुष्य जाय। अज्ञानसे द्रोहियोंके मार्गसे कोई न जावे।

यहां उषाके वर्णनके मिषसे स्त्रियों और पुरुषोंके कर्तव्योंका उपदेश किया है।

१३९. महे सुविताय बोधि— विशेष सुविधा, सुखमयी अवस्था उत्पन्न करनेके लिये जागती रहो, जागो और प्रयत्न करो। विशेष सुख प्राप्त करनेके लिये जागना और यत्न करना योग्य है।

महे सौभगाय प्र यन्धि— विशेष सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यत्नवान होना चाहिये। विशेष भाग्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

१४० एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
१४१ एषा स्या युजाना पराकात् पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥

१४० (दर्शतायाः उषसः) दर्शनीय ऐसी इस उषाके (त्ये एते) वे ये (चित्राः अमृतासः भानवः) विलक्षण अमर प्रकाश किरणें (आ अगुः) फैल रहीं हैं। वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः) दिव्य व्रतोंको निर्माण कर रही हैं और (अन्तरिक्षा आपृणन्तः वि अस्थुः) अन्तरिक्षको भरपूर भर देती हैं और विशेष रीतिसे वहां रहती हैं। (३)

१४१ (एषा स्या) यह वह उषा (पराकात्) दूरसे भी (पञ्च क्षितीः युजाना सद्यः परि जिगाति) पांचो मानवोंको उद्यममें लगाती हुई उनके पास पहुंचती है। (जनानां वयुना अभिपश्यन्ती) लोगोंके कर्मोंको देखती हुई यह (दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी) द्युलोककी पुत्री भुवनोंकी पालना करती है। (४)

चित्रं यशसं रयिं धेहि— विलक्षण श्रेष्ठ यशस्वी धन प्राप्त होना चाहिये। जिससे यशकी हानि होती हो वह धन नहीं चाहिये।

हे मानुषि देवि ! मर्तेषु श्रवस्युं धेहि— हे मानवोंका हित करनेवाली देवी ! तू मनुष्योंको ऐसा पुत्र दे कि जो यशस्वी तथा अन्नवान् हो। अन्न प्राप्त करनेवाला हो।

ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे मनुष्योंको हरएक प्रकारकी सुविधा होती जाय, सौभाग्य प्राप्त होता रहे, उनको यश और धन मिले तथा ऐसा पुत्र हो कि जो यश, धन और अन्न कमानेवाला हो। अयशस्वी निर्धन और अन्नहीन न हो।

स्त्रियोंकी योग्यता

'**मानुषि देवि**' (मानुषी देवी) ये पद यहां स्त्रियोंके विशेष कर्तव्यका बोध कराते हैं। स्त्रिया मानवोंका हित करनेवाली हो। स्त्रियोंमें इतनी योग्यता हो कि जिससे वे मानवोंका हित करनेमें समर्थ हों। वे ऐसा सुपुत्र निर्माण करें कि जो यशस्वी धनवान् और अन्न कमानेवाला हो।

१४० उषासः दर्शतायाः भानवः आ अगुः— सुन्दर उषाके सुंदर किरण फैल रहे हैं। इसी तरह स्त्रियां सुन्दर हों, दर्शनीय हों, सुन्दर लाल, पीले वर्णोंवाले कपडे पहनें और अधिक सुन्दर बनकर अपने सौंदर्यका प्रकाश फैलाएँ। उषाके समान स्त्रियाँ आकर्षक तथा रमणीय हों।

अमृतासः चित्राः भानवः आ अगुः— गतिमान चित्र विचित्र रंगोंवाले किरण उषःकालमें फैल रहे हैं। उषाके समान स्त्रियां चित्रविचित्र रंगोंवाले वस्त्र पहनें, आभूषण धारण करें और त्वरासे तथा स्फूर्तिसे अपने कार्यमें लगें। अपना तेज फैलाएं।

दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः— दिव्य व्रतोंका पालन करे। उत्तम व्रतोंका आचरण करें। दिव्यभाव प्रकट करनेवाले कर्म करें। स्त्रियोंको दिव्य व्रतों नियमों और कर्मोंका पालन करना चाहिये। यह उपदेश स्त्रीपुरुषोंको समान है। दिव्य श्रेष्ठ भाव प्रकट होनेके लिये इसकी आवश्यकता है।

अन्तरिक्षा आ पृणन्तः वि तस्थुः— अन्तरिक्षमें अपने तेजको भरपूर भर देती हैं ऐसी उषाएँ हैं। स्त्रियोंको भी उचित है कि वे लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपने विषयका पूज्य भाव स्थापन करें और विशेष नियमोंसे विशेष रीतिसे स्थिर रहें, (वि तस्थुः) विशेष स्थान प्राप्त करें और उसी स्थानमें स्थिर रहें, चञ्चल न हों। इधर उधर अयोग्य मार्गसे कदापि न जांय। दिव्य व्रतोंका धारण इसीलिये करना चाहिये कि जिससे उनमें श्रेष्ठता स्थिर रूपसे रहे और चञ्चलता दूर हो। सब लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपनी श्रेष्ठताका प्रभाव भरपूर भर दें ताकि कोई उनका अपमान कदापि न कर सके।

१४१ पञ्च क्षितिः युजाना— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद् इनको कार्यमें लगाती है। स्वयं (पराकात्) दूर रहती है, परंतु सब मानवोंको दूरसे ही कार्यमें प्रवृत्त करती है इसी तरह स्वयं पृथक् द्रष्टारूप रहकर सब जनोंको सत्कर्ममें लगाना चाहिये।

सद्यः पञ्च क्षितीः परि जिगाति— तत्काल वह स्वयं सब प्रकारके पांचों मानवोंके पास पहुंचती है और उनको सत्कर्म की प्रेरणा देती है।

जनानां वयुना अभिपश्यन्ती— लोगोंके सब कार्मोंको देखती है, सबोंके कर्मोंका निरीक्षण करती है। कौन अच्छा करता है और कौन बुरा करता है इसका निरीक्षण करती है।

१४२ वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥
१४३ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥

१४२ (वाजिनीवती चित्रामघा) बलवर्धक अन्नसे युक्त तथा विलक्षण धनसे युक्त (सूर्यस्य योषा) सूर्यकी पत्नी (वसूनां रायः ईशे) सब धनोंके ऐश्वर्यकी स्वामिनी है। (ऋषि-स्तुता) ऋषियोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी) ऐश्वर्यवती (जरयन्ती) सबकी आयुका नाश करनेवाली (उषाः वह्निभिः गृणाना) उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर (उच्छति) प्रकाशित होती है। (५)

१४३ (द्युतानां उषसं वहन्तः) तेजस्विनी उषाको ले जानेवाले (अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रति अदृश्रन्) विलक्षण तेजस्वी घोडे दिखाई देते हैं। वह (शुभ्रा) गौरवर्ण उषा (विश्वपिशा रथेन याति) सब प्रकारसे सुन्दर रथसे जाती है। यह (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्योंको रत्न अथवा धन देती है। (६)

दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी– यह दिव्य लोककी पुत्री है और त्रिभुवनका पालन करनेवाली है। यहां भुवनका पालन करनेवाली उषा है ऐसा कहा है। यह उषा द्युलोककी दुहिता है। यह सबकी पालना करती है। पिता द्युलोकके समान तेजस्वी हो यह यहां सूचित होता है। तेजस्वी पिताकी यह पुत्री सुशिक्षासे संपन्न होकर त्रिभुवनके राज्यका पालन करती है।

पुत्रीकी शिक्षा

पुत्रीकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, इसका उत्तर इस मंत्रमें दिया है। प्रथम पुत्रीका पिता द्युलोकके समान तेजस्वी चाहिये। यह आनुवंशिक संस्कार है। पश्चात् वह पुत्री भी स्वयं उषाके समान तेजस्विनी चाहिये, नाना वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर, विद्यासे संपन्न होकर जनताको नाना कार्योंमें प्रवृत्त करे, उनके कर्मोंका निरीक्षण करे और सब राष्ट्रका पालन करे। इतनी चतुर तथा कर्तव्यदक्ष पुत्री होनी चाहिये। इस सूक्तका प्रत्येक शब्द और वाक्य कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये इसकी सूचना देता है। पाठक प्रथम मंत्रसे इस विषयका उपदेश देखें।

स्त्रीका अधिकार

१४२ यह उषा (**सूर्यस्य योषा**) सूर्यकी स्त्री है। (**वाजिनीवती चित्रामघा**) अनेक प्रकारके अन्न तथा धन अपने पास रखती है, (**वसूनां रायः ईशे**) धनों और वैभवोंका ईशन करती है। स्वामिनी होकर उन सब ऐश्वर्योंका शासन करती है।

स्त्री अबला नहीं है।

ऐसी स्त्रीकी प्रशंसा (ऋषि स्तुता) ऋषि करते हैं। जो स्त्री अपने संपूर्ण ऐश्वर्यका योग्य रीतिसे प्रशासन करती है, उसकी प्रशंसा ऋषि करते हैं।

स्त्री प्रशासिका है।

मघोनि वसूनां ईशे— स्वयं अपने पास धन रखती है और सब प्रकारके धनोंपर स्वामित्व करती है। पूर्व मंत्रमें कहा ही है कि यह (भुवनस्य पत्नी) राष्ट्रका, भुवनका पालन करती है। जिस तरह पुरुषको राष्ट्रपति, भुवनपति कहते हैं, उसी तरह शासक स्त्री होनेपर उसको ' राष्ट्रपत्नी, भुवन पत्नी ' कहा जाता है। यहां का ' पत्नी ' पद धर्मपत्नी वाचक नहीं है, प्रत्युत ' पालिका ' का भाव बतानेवाला है।

उषाः वह्निभिः गृणाना उच्छति- उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर प्रकाशती है। इसी तरह स्त्री अग्निके समान तेजस्वी नेताओंके साथ प्रशासन कार्य करती हुई प्रकाशित होती है। स्वयं सूर्यकी पत्नी उषा अग्नियोंके साथ कार्य करती है। इसी तरह राष्ट्रका शासन करनेवाली रानी अन्यान्य अधिकारियोंके साथ राष्ट्रशासनका कार्य उत्तम रीतिसे करे और अपना तेज फैलाये।

यहां सूचित किया है कि जैसा अग्नि सूर्यकी प्रभाका धर्षण नहीं कर सकते, उसी तरह यह सम्राज्ञी अन्यान्य कार्यकर्ताओंके साथ रहकर भी किसी तरह दूषित नहीं होती।

स्त्री रथमें बैठकर जाती है। गोषा नहीं है।

१४३ **द्युतानां उषसं वहन्तः अरुषासः अश्वाः प्रत्यदृश्रन्**- प्रकाशमान उषाके रथको तेजस्वी घोडे चला रहे

१४४ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि ददद् उस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥
१४५ नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

---

१४४ (सत्या महती यजता देवी) सत्य बडी पूजनीय यह उषा देवी (सत्येभिः महद्भिः यजत्रैः देवेभिः) सत्य महान पूजनीय देवोंके साथ रहकर (दृळ्हानि रुजत्) बने अन्धकारका नाश करती है, (उस्रियाणां ददत्) गौओंके लिये प्रकाश देती है, इस कारण (गावः उषसं प्रति वावशंत) गौवें उषाकी कामना करती हैं । (७)

१४५ हे (उष.) उषा देवि ! (न अस्मे) हमें, प्रत्येकके लिये (गोमत् अश्वावत् वीरवत् रत्नं) गौवों, अश्वों और वीर पुत्रोंसे युक्त धन और (पुरुभोजः धेहि) बहुत भोजन सामग्री दो । (नः बर्हिः पुरुषता निदे मा कः) हमारा यश मानवोंके समाजमें निन्दाके योग्य न होवे । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखो । (८)

हैं यह दृश्य दीख रहा है । सूर्यकिरणरूपी घोडे उषाके रथको चलाते हैं । यहां उषा रथमें बैठकर भ्रमण करनेके लिये जाती है । वह घरमें गोषामें नहीं बैठती । वह विश्वमें भ्रमण करती है । स्त्रिया इस तरह भ्रमण करें, राष्ट्रमें ऐसा प्रबंध होना चाहिये जिससे स्त्रिया निर्भय होकर राष्ट्रमें संचार करें । दुष्ट उनका धर्षण करनेमें समर्थ न हों ।

अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रत्यदृश्रन्— तेजस्वी घोडे दीखाई देते हैं । रथके घोडे उत्तम तेजस्वी, फूर्तिले और शीघ्रगामी हों ।

ऐसे सुंदर तेजस्वी रथमें बैठकर (**शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति**) गौरवर्ण स्त्री-राष्ट्रका प्रशासन करनेवाली रानी राष्ट्रमें संचार करती है ।

विधते जनाय रत्नं दधाति— विशेष उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको वह धन देती है । उत्तम कुशल कारीगरको वह धन देती है । राष्ट्रके उत्तम कारीगरोंको इस तरह उत्तेजना मिलनी चाहिये ।

१४४ देवी देवेभिः दृळ्हा रुजत्— देवी देवोंके साथ रहकर सुदृढ शत्रुओंका नाश करती है । यह मंत्र शक्तिका महात्म्य कह रहा है । शक्तिका महत्त्व यह है कि वह सुदृढ शत्रुओंका भी नाश करती है ।

सत्या सत्येभिः दृळ्हा रुजत्— सत्यपालन करनेवाली वीरा सत्यपालक वीरोंके साथ रहकर सुदृढ बने । वह असत्य व्यवहार करनेवालोंका नाश करती है ।

उस्रियाणां ददत्— गौओंको घास आदि देती है । इसलिये (**गावः उषसं वावशंत**) गौवें उषाको चाहती हैं । वैसी गौवें घास पानी समयपर देनेवाली स्त्रीको चाहती है ।

इस सूक्तमें ' दुहिता ' पद है । (दिवः दुहिता) यह उषा द्युलोककी दुहिता है । ' **दुहिता** ' का अर्थ (दोग्धी) गौका दूध निचोडनेवाली है । घरकी पुत्री सवेरे उठे, गौओंको घास पानी आदि देवे, गौओंका प्रेम संपादन करे और गौओंका दूध निकाले । गौओंका दोहन करना यह कार्य घरकी पुत्रीका है, स्त्रीका है ।

१४५ गोमत् अश्वावत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि- जिसके साथ गौवें, घोडे, वीर पुत्र और बहुत भोग सदा रहते हैं ऐसा धन हमें चाहिये । खानेके लिये गौका दूध, दही, मक्खन और घी जितना चाहिये उतना मिले, भ्रमण करने तथा रथ चलानेके लिये उत्तम घोडे हों, भोजनके लिये उत्तम अन्न मिले, पर्याप्त धन हो, इस सबका संरक्षण करनेके लिये वीर हों तथा घरमें वीर पुत्र हों । पुत्रिकाएं भी वीरा हों । यह वैभव हमें चाहिये ।

पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः— मानव समाजमें हमारे कर्मोकी निंदा न हो । हमारे कर्मकी प्रशंसा ही सब करें। ऐसे शुभ कर्म सदा हमसे होते रहें । ' पुरुष-ता ' मानवताकी दृष्टिसे हमारे कर्म श्रेष्ठमें श्रेष्ठ हों । हमारे कर्मोंसे मनवताकी ऊंचाई बढे ।

(ऋ० ७।७६) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१४६ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥
१४७ प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

१४६ (अमृत विश्वजन्यं ज्योतिः) अमर और सबके हितकारी तेजका (विश्वानरः सविता देवः उत् अश्रेत्) विश्वके नेता सविता देवने आश्रय किया है। वह (देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट) देवोंका आंख सूर्य शुभ कर्मके साथ उदय हुआ है। और (उषाः विश्वं भुवनं आविः अक) उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया है। (१)

१४७ (अमर्धन्त. वसुभिः इष्कृतास.) हिंसा न करनेवाले और निवासक तेजोंसे सुसंस्कृत हुए (देवयानाः पन्थाः) देवोंके जाने आनेके मार्ग (मे प्र अदृश्रन्) मैंने देखे हैं। मुझे दिखाई दे रहे हैं। (पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत् उ) पूर्व दिशामें उषाका ध्वज प्रकाश-फहरने लगा है। और (प्रतीची) पूर्व दिशामें उषा (हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्) बडे प्रासादोंके ऊपर प्रकाशित हो रही है। (२)

१४६ **विश्वानरः सविता देवः विश्वजन्यं अमृतं ज्योति उत् अश्रेत्**— विश्वका नेता, सबको चलानेवाला, प्रेरक देव सर्व जनहितकारी अमर तेजका आश्रय करता है। जो (विश्वा-नरः) सबका नेता, सब जनताको चलानेवाला है, वह (सविता) सबका प्रेरक बने, सबको शुभ कर्मकी प्रेरणा करे, (देव) प्रकाशमान हो, विजिगीषु हो, कर्तव्य दक्ष हो, और (विश्व-जन्यं) सर्व जनोंके हित करनेवाले अमर तेजका धारण करे।

सविता सूर्य देवका (ज्योतिः) प्रकाश (विश्व-जन्यं अमृतं) सब प्राणियों, सब वृक्षादिकोंका हित करनेवाला है। तथा मरणको दूर करनेवाला है। सूर्य प्रकाश रोग बीजोंको दूर करता है, आरोग्य बढाता है, अपमृत्युको दूर करता है। सूर्य स्थावर जंगमका आत्मा है (**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** ऋ० १।११५।१) ऐसा इसलिये वेदमें अन्यत्र कहा है। इस तरह सूर्य प्रकाश सर्व जनोंका हितकारी है।

देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट— यह सूर्य देव सबका आंख है, सब विश्वका चक्षु है। सूर्यके प्रकाशसे ही सब कुछ प्रकाशित होता है। सूर्यके प्रकाशसे सबके आंख कार्य करते हैं। इसलिये इसको (**चक्षुषः चक्षुः** । केन उ०) सबकी आखका आंख कहते हैं। यह (क्रत्वा) कर्मके साथ उदय होता है। अर्थात् सूर्यका उदय होनेपर ही यज्ञ, याग आदि शुभ कर्म किये जाते हैं इसलिये इसको सत्कर्मके साथ जन्मा है ऐसा कहा है। मनुष्यको उचित है कि वह जन्मसे ही सत्कर्म करे और दूसरोंको भी सत्कर्ममें प्रेरित करे।

उषा. विश्व भुवनं आविः अकः— उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया। उषाके प्रकाशसे सब विश्व दिखने लगा है। इसी तरह स्त्रिया भी स्वयं ज्ञान-तेजसे तेजस्विनी बने और अपने ज्ञानसे सबको ज्ञानवान् बनावें तथा सबको प्रकाशित करनेका श्रेय लें।

सूर्य और उषा ये दोनों स्वयं तेजस्वी होती हैं और सब विश्वको तेजस्वी बनाती और प्रकाशित करती हैं। मनुष्योंको भी ऐसा ही करना चाहिये। सूर्य मनुष्योंका आदर्श है और उषा सब स्त्रियोंका आदर्श है। अपने आदर्शके समान सबको बनना उचित है।

१४७ **देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त**- दिव्य मार्ग हिंसासे रहित हुए हैं। उषा आनेके पूर्व चारो ओर अन्धेरा था, इस लिये चोर, डाकू, लुटेरे घातपात करते थे, अब उषा आ गयी, प्रकाश हुआ, इसलिये वे हिंसक भाग गये और सब मार्ग निष्कंटक हुए।

देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः— देवोंके जाने आनेके मार्ग, श्रेष्ठ मार्ग धनोंसे भरपूर हुए हैं। क्योंकि अब प्रकाश हुआ, चोरोंका भय रहा नहीं, इसलिये उद्यमी लोग धन लेकर अपने व्यवहार करनेके लिये जा रहे हैं। अतः उषा आनेके पश्चात् सब मार्ग धन-संपन्न हुए हैं जो उषाके पहिले धनशून्य थे।

देवयानाः पन्थाः प्र अदृश्रन्- दिव्य मार्ग उषाके प्रकाशसे दीखने लगे हैं। जो उषाके पूर्व अन्धेरेसे व्याप्त थे।

१४८ तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥

१४८ हे (उषः) उषा देवी ! (तानि इत् बहुलानि अहानि आसन्) वे बहुत दिन थे कि (सूर्यस्य उदिता प्राचीना) जो सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित होते थे । अर्थात् सूर्य उदयके पूर्व उषा बहुत दिन प्रकाशती रहती है । (यतः जारः इव परि आचरन्ती) क्योंकि तू पतिकी सेवा जैसी सती स्त्री करती है, वैसी सेवा करती है, परन्तु (पुनः यती इव न) संन्यासिनी स्त्रीके समान पतिसे विमुख कभी तू नहीं होती। (३)

भगवा ध्वज

पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत्— पूर्व दिशामें उषाका ध्वज फहरने लगा है। उषाका ध्वज उषःप्रकाश है। यह ध्वज भगवा है, गेरवा है। उषाका प्रकाश ही यह ध्वज है। इस ध्वजसे पता लगता है कि सूर्य आ रहा है।

प्रतीची हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्— पूर्व दिशासे उगनेवाली उषा बडे बडे प्रासादोंके ऊपर अपना तेज डालती हुई आ रही है। उषाका प्रकाश सबसे प्रथम ऊंचे स्थानोंपर चमकता है, पहाडोंके शिखर, ऊंचे मकानोंके ऊपरके भाग, ऊंचे वृक्षोंके ऊपरके भाग सबसे प्रथम प्रकाशित होते है।

राज-प्रासाद

यहां '**हर्म्य**' शब्द है, यह राजमहलका वाचक है। जो घर पांच पांच सात सात मंजलोंके होते हैं उनका नाम हर्म्य होती है। राजाओं तथा धनिकोंके घर ऐसे बडे होते हैं। और उनके शिखर सबसे प्रथम उषाके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। जिनका विचार यह है कि वेदके समय झोंपडियां ही रहनेके लिये होती थीं, उनके अशुद्ध मतका निराकरण यह 'हर्म्य' शब्द कर रहा है और यह शब्द बता रहा है कि उस सभ्यताके समय बडे बडे प्रासाद होते थे जिनमें राजा, राजपुरुष तथा धनी लोग रहते थे।

सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन

१४८ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्— सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित हुए बहुत दिन हैं। प्रथम बहुत दिन उषा प्रकाशित होती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। सूर्य उदय होनेसे पूर्व उषाके कई दिन जाते हैं। वे दिन उषाके न्यूनाधिक प्रकाशसे समझे जाते हैं। (बहुलानि अहानि) बहुत दिन उषा प्रकाश रही है, और पश्चात् सूर्यका उदय हुआ है, ऐसी परिस्थिति भारत वर्षमें कदापि नहीं होती है। उत्तरीय ध्रुवके भागमें तीस दिन तक उषा प्रकाशती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। यह परिस्थिति यहां है। भारत वर्षका कोई कवि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन गये ऐसा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वैसा दृश्य यहा नहीं है। हां जो कवि भारत वर्ष तथा उत्तरीय ध्रुवकी परिस्थिति स्वयं जानता हो वही अपने काव्यमें ऐसा कह सकता है कि इस स्थानमें सूर्य उदयके पूर्व उषा देवी बहुत दीन (बहुलानि अहानि) प्रकाशित होती है। इस मंत्रका विचार पाठक करें और जाने कि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन प्रकाशित होनेका आशय क्या है।

उषा जारः इव पर्याचरन्ती— उषा जारकी सेवा करनेके समान सूर्य-पतिकी सेवा करती है। यहा के 'जार' का अर्थ 'पति' ऐसा सबने किया है, क्योंकि सूर्य उषाका पति है। इसमें संदेह नहीं है। यह भी पतित्व आलंकारिक है। पर हमारे विचारसे यहाका 'जार' पद 'जार' का ही वाचक है। क्योंकि (१) '**साध्वी स्त्री**' पतिकी सेवा करती है, (२) '**जारिणी स्त्री**' जारकी सेवा करती है और (३) '**यती संन्यासिनी**' विरक्त संसारसे उदास बनी स्त्री पतिसेवासे विमुख होती है। इन तीन स्त्रियोंमें जारिणी स्त्री की आतुरता अधिक होती है, तथा वह अधिक तत्परतासे जारकी सेवा करती है। यहां उषा अधिक तत्पर है यह बताया है, इसालिये 'जार' शब्दका प्रयोग यहां किया है। इसलिये इसका यह अर्थ करना योग्य है। तथापि सब भाष्यकारोंनें इसका अर्थ साध्वी स्त्री पतिकी सेवा करती है वैसी उषा है ऐसा अर्थ किया है। हम भी इसका खंडन करना नहीं चाहते।

यती इव न— 'यती' का अर्थ संयमशील संन्यासिनी है। संसारसे विरक्त हुई स्त्री संसारमें रही, तो भी वह संसारके कार्योंमें तत्पर नहीं रहती। वैसी उषा नहीं है, उषा अत्यंत तत्परतासे पति सेवा करती है। सब स्त्रियां तत्परतासे पति सेवा करें यह उपदेश यहां है। कोई स्त्री संन्यासिनी न बने, संसारमें रहकर तत्परतासे पति सेवा करे, दक्षतासे संसारके कर्म करती रहे।

१४९ त इद् देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन् त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥ ४ ॥

१५० समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

---

१४९ जो (ऋतावान. पूर्व्यासः कवयः) सत्यके पालनकर्ता प्राचीन ज्ञानी और (सत्यमन्त्रा. पितरः) जिनके मन्त्र सिद्ध किये होते थे, जो सबके पिता जैसे पालक थे, (ते इत् देवानां सधमादः आसन्) वे देवोंके साथ बैठकर सोमरसका आस्वाद लेनेवाले थे, जिन्होंने (गूळ्हं ज्योतिः अनु अविंदन्) गुप्त सूर्यकी ज्योतीको प्राप्त किया और जिन्होंने (उषासं अजनयन्) उषाको प्रकट किया ॥ (४)

१५० (समाने ऊर्वे) एक महत्कार्यके अन्दर वे (अधि संगतासः) एक होते हैं, संघटित होते हैं, और (सं जानते) अपना एक विचार करते हैं, तथा (ते मिथः न यतन्ते) वे कभी आपसमें कलह नहीं करते, (ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति) वे देवोंके अनुशासनोंका भंग कभी नहीं करते और (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए (वसुभिः यादमानाः) धनोंके साथ संगत होते हैं ॥ (५)

---

१४९ यह प्राचीन ऋषियोंका वर्णन है। (पूर्व्यासः) पूर्व समयके (कवयः) कवि (ऋतावानः) सत्यका पालन करते थे, वे (सत्य-मन्त्राः) मन्त्रोंका साक्षात्कार करते थे तथा (पितरः) सबके पूर्वज तथा पालक थे, (देवानां सधमादः) देवोंके साथ साथ बैठकर सोमरस पीकर आनंदित होनेवाले थे, अर्थात् देवोंकी पंक्तिमें बैठनेका जिनका अधिकार था ऐसे अंगिरस ऋषि थे। इन ऋषियोंने (गूळ्हं ज्योतिः) अन्धेरेमें गुप्त हुआ सूर्यका प्रकाश फलाने स्थानसे प्रकट होगा, ऐसा ज्योतिर्विद्यासे कहा और वैसा ही हुआ। उनके कहनेके अनुसार उषा प्रकट हुई और पश्चात् सूर्य भी प्रकट हुआ। ये प्राचीन ऋषि अंगिरस थे, अत्रि कुलके भी थे। ज्योतिष विद्यासे वे जान सकते थे कि दीर्घ कालके पश्चात् फलाने दिन प्रथम उषाका प्रादुर्भाव होगा और उसके पश्चात् उस दिन सूर्य प्रकट होगा। जैसा वे कहते थे वैसा ही होता था।

यह मंत्र वसिष्ठ ऋषिका देखा है और इसमें इनको ' पूर्व्यासः पितरः ' कहा है।

यहां उन्नतिके छः नियम बताये हैं, जो वे प्राचीन कालके पूर्वज अंगिरस आदि ज्ञानी पालते थे, वे नियम ये हैं—

१५० **समाने ऊर्वे अधि संगतासः**– एक महत्कार्य करनेके लिये आपसकी संघटना करना, आपसका विद्वेष हटाना और एक होना, एक अनुशासनमें रहना।

सं जानते— सबका एक विचार, एक संस्कार, एक मत करना, आपसमें मतभेद न रखना,

ते मिथः न यतन्ते– आपसमें विद्वेष बढे ऐसा यत्न कभी न करना, अपना संघटन टूट जाय ऐसा यत्न कभी न करना, परस्परका संघर्ष बढने न देना,

ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति- देवोंके अनुशासनोंको वे कभी तोडते नहीं, स्थायी नियमोंको वे कभी तोडते नहीं। अनुशासनोंका उत्तम पालन करना,

अमर्धन्तः- किसीकी हिंसा नहीं करना, दूसरोंको कष्ट न देना, ऐसा व्यवहार करना कि जिससे किसी दूसरेको कष्ट न पहुंचे,

वसुभिः यादमानाः– धनोंको प्राप्त करना, ये छः नियम हैं, इनको जो पालन करेंगे वे निःसंदेह अभ्युदयको प्राप्त कर सकते हैं। ये नियम अभ्युदय चाहनेवालोंको अपने ध्यानमें रखना उचित है।

१५१ प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥
१५२ एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

(ऋ० ७।७७) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१५३ उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥

१५१ हे (सुभगे उषः) उत्तम भाग्यवती उषा देवी ! (उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः) उषःकालमें जागनेवाले, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ लोग (त्वा स्तोमैः ईळते) तुम्हारी स्तुति स्तोत्रोंसे करते हैं । (गवां नेत्री वाजपत्नी) गौओंको प्राप्त करनेवाली और अन्नका संरक्षण करनेवाली होकर (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो । हे (सुजाते) उत्तम जन्मवाली उषा ! (प्रथमा जरस्व) सब देवोंमें पहिली होकर प्रशंसित हो ॥ (६)

१५२ (एषा उषाः राधसः सूनृतानां नेत्री) यह उषा स्तुति करनेवालेके सद्वचनोंको प्रेरित करनेवाली है । (उच्छन्ती वसिष्ठैः रिभ्यते) यह उषा अन्धकारको दूर करती है और वसिष्ठों द्वारा प्रशंसित होती है । (दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना) बहुत प्रशंसा योग्य धन हमें देती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा उत्तम संरक्षक साधनोंसे संरक्षण करो ॥ (७)

१५३ (युवतिः योषा न) तरुणी स्त्रीके समान यह उषा (उपो रुरुचे) सूर्यके पहिले प्रकाशित हो रही है । यह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) सब जीवोंको सर्वत्र संचार करनेके लिये प्रेरित करती है । (अग्निः मानुषाणां समिधे अभूत्) अब उषःकालमें अग्नि मनुष्योंको प्रदीप्त करना योग्य है । वह प्रदीप्त होकर (तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः) अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकट करता है ॥ (१)

१५१ **उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः स्तोमैः ईळते—** प्रातःकाल उठकर स्तोत्रोंसे ईश्वरकी स्तुति करनी चाहिये। जो (वसिष्ठाः) निवास करनेवाले है, जो एकत्र निवास करते हैं, वे इकट्ठे होकर स्तोत्र पाठ करें और ईश्वरकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें ।

गवां नेत्री वाज-पत्नी– गौओंको चलानेवाली और अन्नका पालन करनेवाली उषा है। उषःकालमें गौओंको चलाया जाता है और अन्नकी देखभाल की जाती है। उषा स्त्री है। अतः गौओंका संचालन और घरमें आये अन्नका रक्षण करना ये कार्य स्त्रियोंकि हैं ऐसा मानना उचित है ।

सुजाते ! प्रथमा जरस्व— हे कुलीन स्त्री ! तू सबसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति कर, प्रथम उठकर, प्रथम आगे हो और ईश्वरकी स्तुति कर । स्त्रियां भी स्तुति प्रार्थना करें ।

१५२ उषःकाल इतना रमणीय होता है कि उसको देखकर कवियोंको काव्यगानका स्फुरण होता है। यह उषा अन्धकारको दूर करती है, प्रकाश देती है। इसलिये उषा प्रशंसाके योग्य है। जो एकत्र रहते हैं, एकत्र निवास करते हैं वे मिलकर उषाकी स्तुति करें।

दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना– अत्यंत प्रशंसित धन हमे देवे । हमे ऐसा धन चाहिये कि जो बहुत प्रशंसाके योग्य है । जिसकी निंदा होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये ।

१५३ **युवतिः योषा न उपो रुरुचे**-तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर अपने तरुण पतिके सामने चमकती है, उस तरह यह उषा अपने सूर्य पतिके पहिले उठकर उसके पहिले ही अपना अन्धकार दूर करनेका कार्य करने लगी है। इसी तरह पतिके पूर्व स्त्री उठे और अपना कार्य करे यह स्त्रीके लिये उत्तम आदेश है । स्त्री कभी पति उठनेके पश्चात् भी सोती न रहे ।

विश्वं जीवं चरायै प्रसुवंती– उषा सब जीवोंको विचरनेके लिये प्रेरित करती है, इसी तरह घरकी स्त्री पतिके

१५४ विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥
१५५ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

१५४ (विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्) सब जगतके सन्मुख अत्यंत प्रसिद्ध यह उषा उदित हुई है। और वह (रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्) तेजस्वी शुभ्र वस्त्र पहन कर बढ रही है। वह (हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्) सुवर्णके समान वर्णवाली तथा सुन्दर दर्शनीय तेजवाली (गवां माता) गौओंकी माताके समान हित करनेवाली और (अह्नां नेत्री) दिनोंका संचालन करनेवाली (अरोचि) प्रकाशित हो रही है ॥ (२)

१५५ (देवानां चक्षुः वहन्ती) देवोंके तेजको धारण करनेवाली (सुभगा) उत्तम भाग्यवाली (सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती) सुन्दर श्वेत किरणोंको- सूर्यके अश्वोंको चलानेवाली (उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) उषा किरणोंसे व्यक्त रूपमें दीखने लगी है। यह उषा (चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता) विलक्षण धनवाली संपूर्ण विश्वके सन्मुख बढ रही है ॥ (३)

पूर्व उठे और अपने घरके गौ आदि जीवोंकी उत्तम व्यवस्था करे। आलस्यमें न रहे।

मानुषाणां अग्निः समिन्धे अभूत्— मानवोंके घरोंमें अग्नि प्रज्वलित करना योग्य है। उषःकालमें अग्नि प्रदीप्त करे।

तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः— अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योति प्रकाशित करो। दीप जलाकर अथवा अग्नि प्रदीप्त करके उसकी ज्योति जले जिससे घरका अन्धकार दूर हो।

स्त्रीके लिये आदेश

स्त्री पतिके पूर्व उषःकालमें उठे। अपने वस्त्र संभाल कर कार्य करनेके लिये तत्पर हो जाय। गौ आदि पशुओंकी देख भाल करे। अग्नि प्रदीप्त करे और दीप जला कर अथवा अग्निकी ज्वालासे अन्धकारको दूर करे।

१५४ विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्- सबसे प्रथम यह प्रसिद्ध (उषा स्त्री) उठी है। इस तरह स्त्री सबसे प्रथम उठे।

रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्— तेजस्वी चमकीला वस्त्र पहन कर कार्य करनेके लिये आगे बढे। स्त्री उठनेके पश्चात् अच्छे वस्त्र पहने और कार्यमें प्रवृत्त हो।

हिरण्यवर्णा सुदृशीक-संदृक्- स्त्री सुवर्णके समान वर्णवाली और सुंदर दर्शनीय बने। स्त्रीको सजकर अपनी सुन्दरता बढानी चाहिये।

गवां माता— स्त्री घरकी गौओंका माताके समान पालन करे।

अह्नां नेत्री अरोचि— दिनमें जो घरके कार्य करने होंगे उनका नेतृत्व करे। प्रकाशित होकर घरका नेतृत्व करे। जैसी उषा अपने विश्वरूप घरका नेतृत्व करती है।

इस मंत्रमें उषाके वर्णनसे स्त्रियोंके कर्तव्य बताये हैं।

१५५ सुभगा देवानां चक्षुः वहन्ती- यह भाग्यवती उषा देवोंके मध्यमें प्रकाशको फैलाती है। इस तरह सौभाग्यवती स्त्री अपने घरमें प्रकाश करे, तेजस्विनी होकर रहे।

सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती- सुंदर श्वेत अश्वको चलाती है। अश्व संचालनकी विद्या जानती है। इस तरह स्त्री अश्व संचालनकी विद्यामें प्रवीण हो। घोडोंको सुन्दर दर्शनीय स्थितिमें रखे। भगवान् श्रीकृष्ण अश्वविद्यामें निपुण थे और अर्जुनके रथके घोडोंका संचालन करते थे। इसमें कोई मान हानि नहीं है। राजा नल, नकुल ये अश्व विद्यामें निपुण थे। स्त्रिया भी अश्व संचालनमें कुशल हों।

उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि— उषा किरणोंसे प्रकट होकर सुंदर दिखती है। इस तरह स्त्रियां सुशोभित होकर बाहर आ जांय।

चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता— अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त होकर विश्वके सन्मुख उषा बढती है। इसी तरह स्त्री भी अनेक वस्त्रों और अलंकारोंसे सजकर, सुशोभित

१५६ अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

१५७ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ॥ ५ ॥

१५८ यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

---

१५६ (अन्तिवामा) हमारे समीप धनको लानेवाली तू (अमित्र दूरे उच्छ) हमारे शत्रुको दूर करके प्रकाशित हो । तथा (ऊर्वीं गव्यूतिं न अभयं कृधि) विस्तृत भूमिको हमारे लिये निर्भय बनाओ । (द्वेषः यावय) शत्रुओंको दूर करो, (वसूनि आभर) धनोंको ला दो । हे (मघोनि) धनयुक्त उषा ! (गृणते राधः चोदय) स्तुति करनेवालेके लिये धन भेजो ॥ (४)

१५७ हे (उषः देवि) उषा देवी ! (अस्मे श्रेष्ठेभि. भानुभिः वि भाहि) हमारे हितके लिये श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो । (नः आयुः प्रतिरन्ती) हमारी आयुको बढाओ । हे (विश्ववारे) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य उषा देवी ! (नः इषं च) हमारे लिये अन्न (गोमत् अश्ववत् रथवत् च राधः दधती) गौओं, घोडों और रथोंके साथ रहने वाला धन दे दो ॥ (५)

१५८ हे (दिवः दुहितः सुजाते उषः) द्युलोककी दुहिता रूप उत्तम कुलीन उषा देवि ! (यां त्वा वसिष्ठाः मतिभि वर्धयन्ति) वसिष्ठ लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं । (सा अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः) वह तू हमारे पास बडा तेजस्वी धन धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधक साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ (६)

होकर घरके बाहर आकर विराजे । स्त्रीके वस्त्र मलिन न हों, वह स्त्री आभूषण रहित न हो, जो उसके पास हो उससे जितना अधिक सुशोभित होनेकी संभावना हो उतना सौंदर्य बढावे ।

१५६ धनको पास लाना, शत्रुको दूर करना, प्रदेशको निर्भय करना, द्वेष कर्ताओंको दूर भगाना, धनसे घर भर देना, भक्तोंको धन देना ये मनुष्यके कर्तव्य हैं ।

अन्तिवामा— अपने पास धनको लाना,

अमित्रं दूरे उच्छ- शत्रुको दूर भगा देना,

ऊर्वी गव्यूतिं न अभयं कृधि- विस्तृत भूप्रदेशको निर्भय करना,

द्वेषः यावय- द्वेष बढानेवालोंको दूर करना,

वसूनि आ भर- धनसे घरको भर देना,

गृणते राधः चोदय-भक्तके लिये धनका प्रदान करना ।

ये कार्य उषा करती है, ये कार्य स्त्रियां करें तथा ये कार्य पुरुषोंको भी करना उचित है ।

१५७ **नः आयुः प्रतिरन्ती**— हमारी आयु बढाओ,

गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः नः दधती— जिस धनके साथ गौएं, घोडे, रथ, अन्न तथा कार्य सिद्धि रहती है ऐसा धन हमें दे दो ।

१५८ **अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः**- हमें बडा विशाल तेजस्वी धन चाहिये ।

(ऋ० ७।७८) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१५९ प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥
१६० प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥ २ ॥
१६१ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥
१६२ अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥
१६३ प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ताऽस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

---

१५९ (अस्याः प्रथमाः केतवः प्रति अदृश्रन्) इस उषाके पहिले किरण दीख रहे हैं । (अस्याः अंजय ऊर्ध्वाः वि श्रयन्ते) इसके गतिशील किरण ऊर्ध्व भागमें आश्रय ले रहे हैं । हे (उषः) उषा देवि ! (अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन) हमारी ओर आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे (अस्मभ्यं वामं वक्षि) हमें उत्तम धन दे ॥ (१)

१६० (समिद्धः अग्निः सीं प्रति जरते) प्रदीप्त हुआ अग्नि बढ रहा है । (विप्रासः मतिभिः गृणन्त. प्रति जरते) ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हुए अपने कर्ममें बढ रहे हैं । (उषा देवी) उषा देवी (विश्वा तमासि दुरिता) सब अन्धकारों और पापोंको (ज्योतिषा अपबाधमाना याति) अपने तेजसे दूर करती हुई जाती है ॥ (२)

१६१ (एता. त्याः उषसः) ये वे उषायें (विभातीः ज्योतिः यच्छन्तीः) प्रकाशती और तेजको देती हुई (पुरस्तात् प्रति अदृश्रन्) हमारे सामने दीख रही हैं । (सूर्यं अग्निं यज्ञं अजीजनन्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको प्रकट किया है । (अजुष्टं तमः अपाचीनं अगात्) अप्रिय अन्धकारको दूर किया है ॥ (३)

१६२ (दिवः दुहिता मघोनी अचेति) द्युलोककी पुत्री धनवाली होकर आती है । (विश्वे विभातीं उषसं पश्यन्ति) सब प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते हैं । यह उषा (स्वधया युज्यमानं रथं आ अस्थात्) अन्नसे भरे रथपर चढती है । (यं सुयुजः अश्वासः आ वहन्ति) जिसको उत्तम शिक्षित घोडे इष्ट स्थानतक पहुंचाते हैं ॥ (४)

१६३ (त्वा अद्य) तुझे आज (अस्माकासः मघवानः सुमनसः) हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा (वयं च) हम सब (प्रतिबुधंत) जानते हैं, तेरा वर्णन करते हैं । हे (उषसः) उषाओ ! (विभातीः तिल्विलायध्वं) तुम प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त करो । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमको कल्याणपूर्ण साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ (५)

---

१६१ इस मंत्रमें तथा कई अन्य मंत्रोंमें भी अनेक वचनमें उषा का प्रयोग हुआ है । सूर्य उदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना इससे सिद्ध होता है । अनेक उषायें सूर्यको प्रकट करती हैं इसका स्पष्ट अर्थ यह है । प्रथम अनेक दिन उषःकाल ही होता है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है ।

१६३ विभातीः तिल्विलायध्वं- स्वयं तेजस्वी बनो और विश्वको स्नेहसे भरपूर भर दो । जगत्से द्वेषभावको समूल दूर करो ।

(ऋ० ७।७९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१६४ व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद् वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥

१६५ व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥ २ ॥

१६६ अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥ ३ ॥

१६४ (जनानां पथ्या उषाः वि आवः) लोगोंके लिये हितकारिणी उषा विशेष रीतिसे प्रकट हुई है । वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मानवोंके पांचों लोगोंको जगाती है । वह (सुसंदृग्भिः उक्षभिः भानुं अश्रेत्) सुन्दर गौओंके साथ तेजका आश्रय करती है । (सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः) सूर्य भी अपने तेजसे द्यावा पृथिवीको भर देता है ॥ (१)

१६५ (उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते) उषाएं अपने तेजोंको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं । (युक्ताः विशः न यतन्ते) संघटित प्रजाजनोंको तरह वे उषाएं अन्धकारके नाश करनेके लिये यत्न करती हैं । हे (उषः) उषा देवी ! (ते गावः तमः सं आ वर्तयन्ति) तेरी किरणें अन्धकारका नाश करती हैं । (सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति) सूर्य अपनी बाहुओं किरणोंको जिस तरह फैलाता है, उस तरह उषाएं अपने तेजको फैलाती हैं ॥ (२)

१६६ (इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्) श्रेष्ठ स्वामिनी ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई है । (सुविताय श्रवांसि अजीजनत्) सबके कल्याणके लिये उसने अन्नोंका निर्माण किया है । (दिवः दुहिता देवी) द्युलोककी पुत्री उषा देवी (अंगिरस्तमा) अंगारके समान तेजस्विनी होकर (सुकृते वसूनि वि दधाति) सत्कर्म करनेवालेके लिये धनोंका प्रदान करती है ॥ (३)

---

१६४ **जनानां पथ्याः**- लोगोंके हितके कर्म करने चाहिये।

मानुषी पञ्च क्षितीः बोधयन्ती— मनुष्योंके ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी और अन्य लोगोंको अर्थात् सब मानवोंको ज्ञान देना चाहिये ।

भानुं अश्रेत्— प्रकाशका आश्रय करना चाहिये ।

सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः— सूर्य अपने प्रकाशसे द्यावा पृथिवीको भर देता है । मनुष्य तेजस्वी बने और अपना प्रकाश चारों दिशाओंमें फैला देवे ।

१६५ **उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते**— उषाएं अपने प्रकाशको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं । वैसी स्त्रियां अपने राष्ट्रके कोने कोनेतक ज्ञानका प्रकाश फैलाएं ।

युक्ताः विशः न उषसः यतन्ते- संघटित प्रजाजनोंके समान उषायें अन्धकारके नाशके लिये यत्न करती हैं । इसी तरह प्रजाजन संघटित होकर, नाना संस्थाएं स्थापन करके ज्ञानके द्वारा प्रजाओंके अज्ञानको दूर करें ।

ते गावः तमः समावर्तयन्ति— उषाकी किरणें अन्धकारको समेट लेती हैं । और

सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति— जैसे सूर्य अपने किरणोंको फैलाता है वैसे उषा अपने प्रकाशको फैलाती है ।

जिस तरह सूर्य और उषा अपने प्रकाशसे जगत्के अन्धकारका नाश करते हैं, उस तरह पुरुष और स्त्री आलस्य छोडकर अपने ज्ञान द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करें । ज्ञानका प्रकाश करें ।

१६६ **इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्**-उत्तम शासकको इन्द्र कहते हैं । यह उषा उत्तम रीतिसे शासन करती है इसलिये उसको ' इन्द्र-तमा ' कहा है । उत्तमसे उत्तम शासनका प्रबंध करनेवाली उषा प्रकट हुई है । इस तरह स्त्रियां घरका शासन प्रबंध उत्तमसे उत्तम रीतिसे करनेवाली हों । नगरका शासन करनेकी योग्यता (पुरं—धी) धारण करें । ऐसी स्त्रियां हों । स्त्रियां ' इन्द्र ' ही नहीं, परन्तु ' इन्द्र-तमा ' हों । उत्तमसे उत्तम शासन प्रबंध करनेकी शक्ति स्त्रियोंमें हो । **स्त्री-शिक्षा** ऐसी होनी चाहिये जिसे स्त्रियां कर्तव्यदक्ष हों और शासन प्रबंध करनेमें अत्यंत प्रवीण हों ।

सुविताय श्रवांसि अजीजनत्— लोगोंके कल्याणके लिये अन्नोंको सिद्ध करें । अन्न पकानेका कार्य स्त्रियोंके

१६७ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ४ ॥
१६८ देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

(ऋ० ७।८०) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१६९ प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्ती रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

---

१६७ हे (उषः) उषा देवी ! (यावत् राधः स्तोतृभ्यः अरदः) जितना धन तुमने स्तोताओंको पूर्व समयमें दिया था, (तावत् राधः गृणाना अस्मभ्यं रास्व) उतना धन प्रशंसित होकर हमें दे दो । (वृषभस्य रवेण यां त्वा जज्ञुः) बैलके शब्दसे तुम्हें सब जानते हैं, उषाके उदयमें बैल तथा गौवें शब्द करती हैं जिससे पता लगता है कि उषःकाल हुआ है और (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः वि और्णोः) सुदृढ पर्वतके कीलेका द्वार खोल दिया है और गौओंको बाहर निकाला है ॥ (४)

१६८ (देवंदेवं राधसे चोदयन्ती) प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है, (अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती) हमारे सन्मुख सत्यभाषणको प्रेरित करती है । (व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः) अन्धकारको दूर करती हुई हमें धन देनेकी बुद्धिका धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रख ॥ (५)

१६९ (विप्रासः वसिष्ठाः) ज्ञानी वसिष्ठ गोत्रके ऋषि (प्रथमाः स्तोमेभिः) सबसे प्रथम स्तोत्रोंसे और (गीर्भिः) वाणियोंसे (उषसं प्रति अबुध्रन्) उषाको जगाते हैं । उषाके समय जागते हैं । यह उषा (समन्ते रजसी विवर्तयन्ती) समान अन्तवाली, द्यावा पृथिवीको घुमानेवाली, (विश्वा भुवनानि आविः कृण्वन्ती) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ॥ (१)

अधीन हो । उनकी निग्रानीमें अश्वोंकी सिद्धता हो ।

सुकृते वसूनि वि दधाति— उषा सत्कर्म करनेवालेके लिये धन देती है । कर्म करनेवालेके कामको स्त्री देखे और उसके कर्मके अनुसार उसे धन देवे । कर्मचारीसे काम लेवे और उसको योग्य धन देवे । शासन प्रबंधका यह एक कार्य है ।

१६७ उषःकाल होते ही गायें और बैल शब्द करने लगते हैं । तब गोशालाका सुदृढ द्वार खोला जाता है और गौवें तथा बैल बाहर निकाले जाते है । चरनेके लिये उनको खुला छोडा जाता है । ' सुदृढ कीलेका द्वार ' (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः) ये शब्द बता रहे हैं कि गोशालाएं कैसी सुदृढ हुआ करती हैं ।

१६८ **देवंदेवं राधसे चोदयन्ती**— प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको सिद्धि प्राप्त करनेके मार्गसे जानेके लिये प्रेरित करो ।

सूनृता ईरयन्ती— उत्तम सत्य भाषण स्वयं करो और दूसरोंको भी उत्तम सत्य भाषण करनेकी प्रेरणा करो ।

सनये धियः धाः— दान देनेके लिये अपनी बुद्धिको प्रेरित करो ।

प्रत्येक कर्मकर्ता धन प्राप्त करनेके लिये, सिद्धि प्राप्त होनेतक प्रयत्न करे । सत्य तथा सरल भाषण करे और दान देनेकी बुद्धिको अपने अन्तःकरणमे रखे । यह मानवधर्म है ।

१६९ **प्रथमाः विप्रासः वसिष्ठाः**'— ऐसा वसिष्ठोंका वर्णन यहां है । वसिष्ठ गोत्री विप्र पहिले थे । अन्य ऋषियोंके पूर्व समयके ये ज्ञानी थे । सबसे प्राचीन ऋषि ये थे । ये उषःकालमें उठते और उषाके स्तोत्र गाते थे ।

' समन्ते रजसी विवर्तयन्ती '— द्युलोक और पृथिवी लोक, इनका आपसमें (सं-अन्ते) अन्त भाग जोडा है, एक दूसरेके संबंध जुडा है ऐसा दीखता है । ये दोनों लोगोंको (विवर्तयन्ती) घुमानेवाली उषा है । ये दोनों लोग समान रीतिसे जैसे भ्रमण हो रहे हैं ऐसा दीखनेवाला इस भूमंड-

१७० एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥
१७१ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

ऋ. ७।४१।७; अथर्व. ३।१६।७; वा. य. ३४।४०; तै. ब्रा. २।८।९।९

---

१७० (एषा स्या उषा नव्यं आयुः दधाना) यह वह उषा नवीन तारुण्यकी आयु धारण करती है, (गूढ्वी तमः ज्योतिषा) और गाढ अन्धकारको अपने तेजसे निवारण करती हुई (अबोधि) जागती है। (अग्रे) प्रारंभमें (अह्रयाणा युवतिः एति) लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्रीके समान यह सूर्यके पूर्व चलने लगती है। तथा (सूर्यं अग्निं यज्ञं प्र अचिकितत्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको बतलाती है ॥ (२)

१७१ (अश्वावती गोमतीः वीरवतीः) घोडे, गौवें और वीर पुरुष-वीरपुत्र जिसके साथ है ऐसी (भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु) कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करे। ये उषायें (घृतं दुहानाः) घी अथवा जलको दुहकर देनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब ओरसे परिपुष्ट हुई हों। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ (३)

ऊपर एक ही स्थान है और वह है उत्तरीय ध्रुव प्रदेश। इस प्रदेशमें रहनेवाला मनुष्य देख सकता है कि भूमि और द्युलोक परस्पर लगे हैं और वे (विवर्तयन्ती) वर्तुल गतिसे घूम रहे हैं। प्रदक्षिणा कर रहे हैं। अपने चारों ओर इनका भ्रमण हो रहा है। उषा इन लोगोंको घुमा रही है यह आलंकारिक वर्णन है।

१७० एषा नव्यं आयुः दधाना उषा ज्योतिषा गूढ्वी तमः अबोधि- यह तरुण आयुवाली उषा अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई पतिके पूर्व जाग उठी है। इसी तरह स्त्री पतिके पूर्व उठे, अपने कर्तव्य कर्मको करे, प्रकाश करके अन्धकारको दूर करे।

अह्रयमाणा युवतिः अग्रे एति अग्निं यज्ञं आचिकितत्— लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्री पतिके पहिले उठती है और अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञको करती है।

पतिके पूर्व स्त्री उठे, अपने कर्तव्य कर्म करे, जिससे पतिका प्रेम ऐसी तरुणीपर जमता है। परंतु जो सुस्त स्त्री होती है, वह पतिके लिये उतनी प्रिय नहीं होती। स्त्री पहिले उठे ऐसा कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि पति बहुत देरी करके उठे। '**उषर्बुध**' उषःकालमें उठनेवाले पुरुषोंका वर्णन अन्यान्य मंत्रोंमें किया ही है।

१७१ उष कालमें घोडे, गौवें और वीर पुत्र घरसे बाहर आते हैं, घर इनसे शोभावाला होता है। गौके दूधका घी पर्याप्त तैयार होता है। कल दोहे दूधका रात्रीमें दही बनाकर सवेरे मख्खन निकाल कर उसका घी बनाना। इस घीका नाम 'हैयंगवीन' है। यह घी सवेरे ही तैयार होता है इसलिये ऐसे घीको उषा देती है ऐसा कहा है।

इस मंत्रमें '**उषासः**' अनेक उषाएं ऐसा कहा है। सूर्य उदयके पहिले इस तरह वैभव संपन्न अनेक उषाएं आती हैं। पश्चात् सूर्य देव, उषाके पति देव आते हैं। (**उषासः नः सदं उच्छन्तु**) ऐसी भाग्ययुक्त उषाएं हमारे घरको उज्वल बनावें। सूर्योदयके पूर्व अनेक उषाएं आयें और वे हमारे घरको तेजस्वी बनावें।

(ऋ० ७।८१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

१७२ प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

१७३ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

१७४ प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

१७५ उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

---

१७२ (आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता) आनेवाली अन्धकारको दूर करनेवाली द्युलोककी दुहिता उषा (प्रति अदर्शि उ) दिखाई देती है । (महि तमः अप उ व्ययति) बडे अन्धकारको दूर करती है । और (सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा देखनेके लिये प्रकाशको करती है । फैलाती है ॥ (१)

१७३ (सूर्यः उस्रियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणोंको साथ साथ ऊपर फेंकता है । तथा (उद्यन् नक्षत्रं अर्चिवत्) सूर्य उदय होनेके पहले नक्षत्रोंको तेजस्वी बनाता है । हे उषा देवी ! (तव इत् सूर्यस्य च व्युषि) तेरे तथा सूर्यके प्रकाशित होनेपर (भक्तेन संगमेमहि) अन्नके साथ मिलेंगे, अन्नको प्राप्त होंगे ॥ (२)

१७४ हे (दिवः दुहितः उषः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (जीरा: त्वा प्रति अभुत्स्महि) हम शीघ्र कर्म करनेवाले तुझे जगावेंगे । हे (वनन्वति) धनवाली उषा ! (या पुरु स्पार्हं वहसि) जो तू बहुत स्पृहणीय धनको लाती है और (दाशुषे मय रत्नं न) दाताके लिये सुख और धन देनेके समान तू सबको सुख और धन देती है ॥ (३)

१७५ हे (महि देवि) महति उषा देवते ! तू (उच्छन्ती मंहना) अन्धकार दूर करती और अपने महत्वको प्रकट करती है, (या स्व. दृशे प्रख्यै कृणोषि) और जो तू विश्वके दर्शन और प्रबोधनके लिये प्रकाश करती हैं । (तस्याः ते रत्नभाजः ईमहे) इस तरह तुझ रत्नोंका सेवन करनेवालीसे हम प्रार्थना करते है कि (वयं मातुः सूनवः न स्याम) हम माताके जैसे पुत्र होते हैं वैसे हम तेरे पुत्र बनें ॥ (४)

---

१७२ द्युलोककी पुत्री उषा आती है, लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये अन्धकार दूर करती है और प्रकाशको फैलाती है । इसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरमें प्रकाश करे और अन्धेरा दूर करे। और घरका प्रबंध उत्तम करे ।

१७३ सूर्य जबतक पृथ्वीके नीचे रहता है, तबतक वह अपने किरणोंको ऊपर फेंकता है जिससे चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं । यहां ' नक्षत्र ' शब्दका अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र, आदि ग्रह ही हैं । क्योंकि नक्षत्रका स्वयं प्रकाश है और वहांतक हमारे सूर्यका प्रकाश पहुंच नहीं सकता । ' **सूर्यरश्मिः चन्द्रमाः ।** ' वा० य० १८ । ४० ऐसे मंत्रोंमें सूर्यके रश्मि चन्द्रमाको प्रकाशित करते हैं ऐसा कहा है । इन मंत्रोंके साथ इस मन्त्रका विचार करनेसे यहांका ' नक्षत्र ' पद चन्द्रादि ग्रहोंका वाचक दीखता है । सूर्य तथा उषाका उदय होनेपर चावल पकाते हैं, उसका हवन होता है और फिर वह अन्न सब खाते हैं ।

१७४ हम सब प्रभात समयमें उठते हैं, (जीराः) अपने कर्तव्य कर्म अतिशीघ्र तथा अत्यंत उत्तम रीतिसे करते हैं इसलिये हम स्पृहणीय धन तथा उत्तम सुख प्राप्त करते हैं । जो इस तरह प्रातः उठकर अपने कर्तव्य करेगा वह भी उत्तम धन प्राप्त करेगा ।

१७५ उषा प्रकाशती है, उससे सब लोग जागते हैं और मार्ग देखते हैं । यह उषा रत्नोंवाली माता जैसी है । उसके हम पुत्र जैसे हों और वह हमारी माता जैसी हो । माता जैसी पुत्रोंको प्रेमसे अन्न धन देती है वैसी उषा हमें अन्न धन और सुख देवे ।

१७६ तच्चित्रं राध आ भरोषो यद् दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥
१७७ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥

१७६ हे उषा देवी ! (यत् दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः) जो अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन है (तत् आ भर) वह हमें भर दो । हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (यत् ते मर्तभोजन) जो तुम्हारे पास मनुष्योंके योग्य भोजन है, (तत् रास्व) वह भोजन हमें दो, हम (भुनजामहै) भोजन करेंगे ॥ (५)

१७७ हे उषा देवी ! (सूरिभ्यः अस्मभ्यं अमृतं वसुत्वनं श्रवः) हम ज्ञानियोंके लिये अमर धन और यश तथ (गोमतः वाजान्) गौओंसे युक्त अन्न दे दो । (मघोन चोदयित्री सूनृतावती उषाः) धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा करनेवाली और सत्य भाषणकी प्रेरणा करनेवाली उषा (स्रिधः अप उच्छत्) शत्रुओंका नाश करती है ॥ (६)

१७६ हमे यशस्वी धन और मानवोंके योग्य अन्न मिले ।

१७७ ज्ञानियोंको अमर धन युक्त यश मिले, उनको गौवे मिलें, अन्न पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त हों, इससे वे यज्ञ करें, सत्य व्यवहारको बढा देवें और मानवताके शत्रुओंका नाश करें और सज्जनोंकी उन्नति करें ।

आंगिरस कुलोत्पन्न संवर्त ऋषिका
उषा वर्णन

(ऋ० १०।१७२।१-२)

(संवर्त आंगिरसः । उषाः । द्विपदा विराट् ।)

१७८ आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ १ ॥
आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥ २ ॥ (१)
१७९ पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥ ३ ॥
उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयाति वर्तनिं सुजातता ॥ ४ ॥ +(२)

+ साम० ४५१; अथर्व० १९।१२।१

१७८ हे उषा ! (वनसा सह आ याहि) धनके साथ आओ । (यत् ऊधभिः) जो दुग्धाशयसे पुष्ट हैं वे (गावः वर्तनिं सचन्त) गौवें रथकी सेवा कर रहीं हैं । बैल उषाके रथको जोते गये हैं ॥ (१)

हे उषा ! (वस्व्या धिया आयाहि) प्रशंसनीय अनुग्रह बुद्धिके साथ आओ । (सुदानुभिः मंहिष्ठः) दाताओं द्वारा महनीय प्रशंसनीय और (जारयन्मखः) यज्ञमें स्तवन करनेका यह समय है । इस समय तू यहां आओ ॥ (२)

१७९ (पितुभृतः न) अन्नसे भरण करनेवालोंके समान (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले हम (तन्तुं इत् प्रति दध्मः) लंबे उषःकालकी स्तुति करते हैं । (यजामसि) और उसका यजन भी करते हैं ॥ (३)

(उषाः स्वसुः तमः) उषा अपनी रात्री रूपी बहिनका अन्धकार (अप संवर्तयाति) दूर हटा देती है । और (सुजातता वर्तनिं) सुप्रजा उत्पन्न करनेके मार्गको पहुंचाती है ॥ (४)